आवाज़ों के अर्थ



दीना नाथ "नादिम"

जे.एण्ड के.अकैडमी ऑफ आर्ट,कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

आवाज़ों के अर्थ

(कश्मीरी कविताएँ)

दीनानाथ 'नादिम'

अनुवाद
रतनलाल शांत

प्रकाशक
जे.एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़
जम्मू

आवाज़ों के अर्थ

दीनानाथ 'नादिम' की कुछ चुनी हुई कश्मीरी कविताओं का हिन्दी रूपांतर–रतनलाल शांत



प्रथम संस्करण	:	2002
आवरण	:	स्व0 गुलाम रसूल 'सतोष' की एक कलाकृति
प्रकाशक	:	जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू
मुद्रक	:	जे. के ऑफसेट प्रिंटर्ज़, जामा मस्जिद, दिल्ली–6
मूल्य	:	65/–रुपये

Hindi translation of selections from Dina Nath Nadim's Kashmiri poems by R.L Shant.

प्रकाशकीय

कश्मीरी साहित्य के आधुनिक युग के प्रर्वतक कवि स्व0 दीनानाथ 'नादिम' की प्रतिनिधि कविता को हिन्दी में अनूदित कराने के निर्णय के पीछे हमारा उद्देश्य वास्तव में हमारी अकैडमी के सामान्य उद्देश्यों में से एक है। जम्मू कश्मीर प्रदेश में बोली जाने वाली तथा यहां के समर्थ कृतिकारों द्वारा अन्य (मातृभाषा-इतर) भाषाओं में रची गई कालजयी रचनाओं का एक दूसरे में अनूदित कराना, अकैडमी की स्थापना के मूल सिद्धांतों में से एक अहम सिद्धांत है। यह सर्वविदित है कि कश्मीरी, डोगरी, लद्दाखी, गोजरी, पहाड़ी, पंजाबी, बल्ती आदि इस प्रदेश के निवासियों की मातृभाषाएं हैं।

कश्मीरी, जम्मू कश्मीर प्रदेश की एक महत्वपूर्ण भाषा है, जिसके साहित्य के आठ सौ वर्ष गहरे आईने में आप यहां के जन तथा जीवन की सर्वोत्तम तथा विश्वसनीय झांकी देख सकते हैं। इतने लंबे इतिहास के दौरान इस पर स्थानीय भौगोलिक-राजनीतिक स्थिरता-अस्थिरता का प्रभाव समय समय पर पड़ता रहा। वर्तमान काल में इस का प्रभाव यह रहा कि इस साहित्य में आधुनिकता का प्रादुर्भाव स्वतंत्रता संग्राम छिड़ने के एकदम साथ साथ ही हुआ। स्वातंत्र्य चेतना के संवाहक 1947 ई0 से पहले 'महजूर', 'आज़ाद' तथा 'ज़िंदा कौल' थे, पर इस चेतना का सही साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रतिफलन हमें दीनानाथ 'नादिम' (1916-1988) मं ही मिलता है। इस कवि ने एक ओर प्रगतिशीलता के प्रति उदार स्वीकृति को अभिव्यक्ति दी तथा दूसरी ओर शिल्प की नवीन पश्चिम अवधारणाओं को आत्मसात किया। परिणामतः नादिम से प्रभावित कवियों का सिलसिला चला जो किसी

न किसी रूप में आज तक जारी है। आधुनिक संवेदनशीलता के बीज सब से पहले उन्हीं में अंकुरित हुए, ऐसा आलोचकों का मानना है। ऐसे कवि से अकश्मीरी सहृदय को परिचित कराना हमारा कर्तव्य था जो हमने निभाया है। परिणाम यह ग्रंथ है।

डॉ॰ रतनलाल शांत कश्मीरी तथा हिन्दी दोनों में समान अधिकार के साथ लिखते हैं। कश्मीरी में कहानी, नाटक, आलोचना तथा हिन्दी में कहानी, नाटक, आलोचना के अतिरिक्त कविता भी। उनके कई मौलिक तथा अनूदित ग्रंथ (कश्मीरी तथा हिन्दी दोनों में) राज्य के तथा केंद्रीय संस्थानों से पुरस्कृत हो चुके हैं। प्रस्तुत अनुवाद में उनका प्रयास मूल भाषा का लहजा तथा प्रवाह यथासंभव सुरक्षित रखने का रहा है, कविता की ध्वनि तथा छंद दोनों में । पाठक ऐसा स्वयं अनुभव करेंगे।

हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक और आलोचक इस अनुवाद की गुणवत्ता और महत्ता, दोनों से लाभान्वित होंगे, जिससे मूल कश्मीरी कविता के और करीब जाने में उनका मार्गदर्शन हो सकेगा।

बलवंत ठाकुर

सचिव

आवाज़ों के अर्थ

पूर्वाभास–1

दीनानाथ 'नादिम' : व्यक्तित्व और कृतित्व

दीनानाथ 'नादिम' का व्यक्तित्व कश्मीरी साहित्य के आधुनिक काल से उसी तरह संबद्ध है जिस तरह भारतेंदु का हिंदी साहित्य के और एज़रा पाउँड तथा ईलियट का अंग्रेज़ी साहित्य के आधुनिक काल से। आधुनिकता आगे चल कर साहित्य में एक चिंतन पद्धति बनी हो; चाहे बदलते जीवन मूल्यों का चेतना वृत्त हो, यह स्पष्ट है कि इस का आरंभ एक प्रवृत्ति के रूप में हुआ। यह प्रवृत्ति विषय, वस्तु तथा शैली तीनों में इतनी स्पष्ट थी कि साहित्य के इतिहास में आधुनिकता का एक काल–विभाग भी निश्चित किया गया। कश्मीरी साहित्य मे भी आधुनिकता की चेतना का आरंभ कुछ कवियों, कुछ व्यक्तित्वों के द्वारा हुआ और उन्ही से इस साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल गिना जाने लगा है। दीनानाथ 'नादिम' इस नवीनता के साथ इतना जुड़े हुए हैं कि कुछ आलोचकों ने आधुनिक काल के नादिम कालीन भाग को 'नादिम–युग' कहना ज़्यादा तर्कसम्मत माना है।

आधुनिकता या कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति किसी साहित्यकार में इतनी स्पष्ट तथा बलवान दिखती है कि हम उंसी को उस नई प्रवृत्ति का अगुआ मानते हैं। यह भी सत्य है कि कोई साहित्यिक प्रवृत्ति धीरे धीरे कई साहित्यकारों में प्रकट होती दिखती हैं जब तक कि वह बहुत स्पष्ट हो जाती है तथा अपने समय की मुख्य धारा बन जाती है। पर यह भी सत्य है कि कभी कोई व्यक्ति लेखक इतना मौलिक तथा प्रयोगशील होता है कि न केवल बदली हुई विषय वस्तु की चयन प्रवृत्ति का समर्थन करता है बल्कि अपनी ओर से इस प्रवृत्ति को समर्थित संवर्द्धित तथा

परिवर्तित भी कर देता है। 'नादिम' ने कश्मीरी साहित्य के आधुनिक काल में यही किया।

कश्मीरी साहित्य में, वस्तुतः कश्मीरी काव्य में, अठारहवी शती से जो सूफी काव्यघारा चली उसने उन्नीसवीं शती के अधिकाँश काव्य को भी प्रभावित किया। यहां तक कि जो दृश्यमान असूफी कविताएँ थीं, या जिनमें सूफीवाद के प्रभावग्रहण या प्रचारवाद के लिए ज्यादा गुँजाइश नहीं थी, उन्हें भी सूफीमत ने कहीं न कहीं ज़रूर छुआ। कश्मीर का सूफ़ीवाद शेष भारतीय सूफ़ीवाद से बहुत मिलता जुलता है हालाँकि इन में अतंर भी बहुत है। उदाहरणतः अकश्मीरी सूफ़ीवाद में वेदांत अथवा शैव अथवा वैष्णव मत का बहुत दखल नहीं, जबकि स्थानीय सूफीवाद, शैव तथा बौद्ध परंपराओं का संशोधित आत्मसातीकरण करता है। यों कि निष्कर्षतः ये परंपराएँ शुद्ध इस्लामित नहीं हो जाती जबकि भारतीय सूफीमत अंततः इस्लामी उद्देश्य की दिशा में बढ़ता दिखाई देता है। कारण कश्मीर की इस्लाम–पूर्व धार्मिक–सामाजिक संरचना में ढूंढ़े जा सकते हैं, जिन में परवर्ती (इस्लामागमन के बाद) परिवर्तन आमूलचूल नहीं हुआ। समाज का बाह्य रूप नए धर्मागमन के बाद बेशक बदला और उसके परिर्वतन की दशा दिशा अन्य गैर इस्लामी समाजों के इस्लामीकरण से भिन्न नहीं थी। पर इस समाज का आभ्यंतर सदियों तक आमूल नहीं बदल सका। अभी तक, सात आठ सौ वर्षो कें बाद भी इस्लामी समाज में पूर्व रीतियाँ और परंपराओं के कुछ अवशेष अक्षुण्ण मिलते हैं–धार्मिक अनुष्ठान प्रणाली में भी तथा सामाजिक रिश्तों की प्रणाली में भी। सूफी मत का प्रादुर्भाव यहां भारतीय मनीषा के बलशाली बौद्धिक प्रस्फुटन अर्थात कश्मीरी शैवमत के चरम विकास काल में हुआ, इसलिए इस मत ने नवागत इस्लामी सूफीवाद को कुछ बदल भी दिया। स्वयं शैवमत चूंकि पूर्ववर्ती बौद्ध तथा वेदांत के प्रभाव वहन करता आया था, इसलिए उन सब की परंपरा का भी अंश इस में मौजूद था। उन्नीसवीं शती की अधिकाँश काव्य विधाएँ और कवि देखें, उनमें कश्मीरी सूफ़ीमत के किसी अंश की कुछ मात्रा ज़रूर मिलेगी। नीतिकाव्य, मसनवियाँ युद्ध काव्य, शुद्ध धार्मिक काव्य (जैसे नातें, मनकबतें आदि) सब में सूफ़ी विचार धारा कहीं न कहीं बोलती है। किसी हद तक–यद्यपि लेशमात्र में ही, यह प्रवृत्ति भक्ति–कवियों को भी अनछुआ नहीं छोड़ता। बीसवीं सदी के केई कवि, वस्तुतः

आरंभ के अधिकांश कवि, सूफ़ी विचार धारा को ही बखानते रहे। निस्संदेह कुछेक कवि (जैसे समदमीर, अहद ज़रगर) तो समर्थ सूफ़ी कवि के तौर पर ही इस शताब्दी में रचनारत रहे, पर शेष तथा कथित सूफियों की कविता मात्र पिष्टपेशन थी और उबाऊ होने लगी थी। इस कारण इस सदी में लीक से हटने का तात्पर्य था सूफ़ी काव्य धारा से अलग कुछ और कहना। इस प्रकार के अलगाव के बिंदु पहलीबार 'महजूर' और 'आज़ाद' में दिखाई दिए। उन्होनें सूफी–रहस्यात्मक प्रेम के स्थान पर सांसारिक प्रेम तथा पारलौकिक जीवन के बदले इहलौकिक जीवन के सरोकारों पर रचना की। आधुनिकता के पहले ऐसे प्रस्फुटन इन दो कवियों में नज़र आते हैं।

आधुनिकता का एहसास

परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज तथा साहित्य दोनों का परिदृश्य परिवर्तित हुआ। यह केवल कश्मीरी के बारे में ही सत्य नहीं है, अपितु सारे भारतीय साहित्यों के बारे में भी है। पर, यहां के परिवर्तन कुछ ज़्यादा व्यापक थे। सामाजिक और राजनीतिक चिंताएँ पहली बार खुलकर कवि की प्रेरणाएँ बन गईं तथा कविता गेयता की हदबंदी से बाहर आ गई। पहली बार गद्य की विधाएँ जैसे कहानी, उपन्यास, निबंध, समालोचना, प्रवर्वित हुईं। लिखित नाटक एक दशक की उम्र का था, पर उसमें अब सोद्देश्य तथा साहित्य सम्मत रचना होने लगी। कविता के क्षेत्र में भी केवल छंदोबद्धता उत्तमता की माप नहीं रही। स्वच्छंद कविता रची जाने लगी तथा नाटक छंदोबद्ध या कविताबद्ध हो गए। इसके पीछे साहित्यिक कारण तो थे ही पर सामाजिक राजनैतिक कारण भी थे, जो शेष भारत जैसे ही थे। जो भी हो, विषयगत या शैलीगत परिवर्तनों में स्वतंत्रतागमन के फलस्वरूप जो तीव्रता आ गई, कश्मीरी साहित्य के संदर्भ में वह तीव्रता सकारण तथा क्रमबद्ध दिखी। इसलिए यहाँ स्वातंत्र्योत्तर काल अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। आधुनिकता की शुरुआत 'मजहूर' से होने के बावजूद आधुनिकता का स्पष्ट एहसास 1947 के बाद ही होता है। इस एहसास का सब से जीता जागता रूप दीनानाथ 'नादिम' की रचना है। 'नादिम' न सिर्फ नई सामाजिक राजनैतिक चेतना के संवाहक रहे, बल्कि नई साहित्यिक विधाओं के पोषक भी थे। कई विधाओं जैसे स्वच्छंदकविता

अंपारंपारिक गीत, गीतनाटक, संगीतनाटक, (पश्चिमी) सॉनेट (छंद) हाइकू (छंद) तथा कहानी को (सोमनाथ जुत्शी के तुरंत बाद) कश्मीरी में पहली बार ले आने का श्रेय भी उन्ही को है। कुल मिलाकर उन्होंने चार सौ से ऊपर रचनाएँ रचीं, पर उनका कर्तृत्व संख्या के आधिक्य में उतना नहीं जितना इस बात में है कि अपनी रचना में उन्होंने अपूर्व गुण पैदा किए। उनकी कविता ऐसे समय में कश्मीर के कोने कोने तक जा पहुँची और जन सामान्य के लिए जीवन और जागृति का पर्याय बन गई, जिस समय कश्मीरी साहित्य विशेषकर कविता अधिकतर अपढ़, अधपढ़े लोगों के लिए गार्हस्थिक तथा प्रतिलौकिक मादक मंत्र की तरह व्यक्तिगत साँत्वना या जगत से ध्यानापकर्षण का साधन मात्र थी। उनकी कविता समकालीनों तथा कनिष्ठ अनुवर्तियों के लिए आदर्श बन गई। यही कारण है कि आधुनिकता की वास्तविक शुरुआत 'नादिम' से ही मानी जाती है और 1947 से 1956–57 तक का दशक़ 'नादिम' का दशक कहलाया जाना चाहिए।

युग–पुरुषत्व

'नादिम' के व्यापक प्रभावी व्यक्तित्व और विविधतापूर्ण कृतित्व के कारण हम उन्हें युगपुरुष कह सकते हैं। ऐसा कहते हुए हम उनकी कविता की गुणात्मक आलोचना नहीं करते और न ही उनके द्वारा प्रगतिवादी आंदोलन के साहित्यिक समर्थन के गुण–अवगुण का आकलन करते हैं; हालांकि आज हम बेहतर स्थिति में हैं कि 'नादिम' के प्रगतिवाद से प्राप्त फ़ायदे नुकसान की समीक्षा करें। स्वयं कवि की प्रतिभा को उस विचारधारा से प्राप्त लाभालाभ का भी मूल्यांकन किया जा सकता है। शायद हमें यह लगे कि 'नादिम' जैसे मौलिक प्रतिभा संपन्न तथा प्रसन्नाभिव्यक्ति के कवि को प्रगतिवाद से बहुत उपयुक्त दिशा नहीं मिली। परंतु इस प्रकार के आज के निष्कर्षों को विगत साहित्यिक इतिहास पर फैसला देने के लिए नहीं लिया जा सकता है केवल एक बात, आज की आलोचना की दृष्टि से, सर्वोपरि रहती है। वह यह कि यदि 'विचारधारा' की 'दिशा' ने नादिम को सर्वथा स्वतंत्र काव्यरचना में बाधित किया हो तो उन के व्यक्तित्व की प्रभविष्णता देखते हुए उन्हें और ऊँची पदवी पर आसीन किया जाना चाहिए। वे जो कुछ हुए, ऐसी

'वैचारिक बाधाओं' के बावजूद हुए, तथा कथित 'अनुपयुक्त दिशा' के बावजूद हुए। यही उनका युग पुरुषत्व था।

प्रभावग्रहण के दिन

'नादिम' के प्रगतिवादी कवि होने के कई कारण थे। अपनी प्रभावग्रहण की उम्र में अर्थात बीसवीं शती के चौथे दशक में, जब वे स्कूल कालेज में पढ़ने लगे तो घर की आर्थिक स्थिति से सीधे जूझना पड़ा। पिता पं0 शंकर कौल, जो एक साध।रण मध्यवित्त परिवार से संबंध रखते थे, दीनानाथ को उसकी छः वर्ष की उम्र में ही छोड़ गए थे। मां 'सुंदर–द्यद' ने तमाम कठिनाइयाँ झेल कर बच्चे का पालन पोषण किया और अपने परिश्रम से परिवार की जिंदगी तथा इज़्ज़त की रक्षा की। साथ ही बालक दीनानाथ को कश्मीरी भाषा–सपंदा तथा भक्ति–काव्य परपंरा से सम्पन्न किया। तेरह वर्ष की उम्र में (1929 ई॰ में) जब लड़का मैट्रिक की परीक्षा पास करके अपने समय के एकमात्र कालेज–श्रीप्रताप कालेज– में दाखिल होकर पढ़ने लगा तो आर्थिक अभाव, मुँह बाकर सामने खड़े हो गए। मात्र ट्यूशन पढ़ा के घर चलाना संभव नहीं हुआ। पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। 1934 में एक निजी स्कूल–'सिटी एकैडेमी'– खोला। 1937 में एक अन्य स्कूल में नौकरी की और इन्ही छोटी मोटी नौकरियों के दौरान 1940 में बी0ए0 की परीक्षा पास की तथा 1943 मे बी0 टी0। तब से अधिकतर जिंदगी स्कूलों में अध्यापन में गुज़ारी। यद्यपि बीच में कुछ देर राज्य की विधानपरिषद में अध्यापकों के प्रतिनिधि के तौर पर सदस्य बनकर रहे तथा स्वतंत्रता के बाद प्रादेशिक मुख्यमंत्रियों शेख अब्दुल्ला, गुलाम मुहम्मद सादिक तथा वख्शी गुलाम मुहम्मद के निकट आने के कई अवसर प्राप्त हुए, पर बौद्धिक या राजनीतिक परतंत्रता को कभी स्वीकार नहीं किया तथा अपने अभावों भरे जीवन में ही अपने परिवार का भरण पोषण करते रहे। श्रीनगर के हब्बाकदल के पुराने मुहल्ले में पले बढ़े इस कवि ने गरीबी और आर्थिक विषमता को जैसे देखा उसने इसे स्कूल–कालेज के दिनों उर्दू हिंदी कविता के प्रगतिवादी विचार के प्रति आकृष्ट किया। फिर पढ़ने को इक़बाल की कुछ 'प्रतिपरंपरात्मक' या 'विद्रोह' स्वरयुक्त कविताएँ तथा जोश मलीहाबादी, एहसान बिन दानिश, हफ़ीज़ जालंधरी के अतिरिक्त रूसी कवियों (जैसे मायकोव्हकी) की कविताएँ मिलीं। प्रगतिवादी आंदोलन प्रचारात्मक था और भारत साम्यवादी आंदोलन के लिए समर्थन

जुटाने की दृष्टि से प्रयोग में लाया जाने लगा था। कश्मीर में यह प्रक्रिया भिन्न नहीं थी। यहाँ इसे सही ज़मीन पर बिठाने के लिए भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के पदाधिकारी आए तथा स्थानीय रचनाकारों को संगठित तथा शिक्षित किया। यहां कल्चरल कांग्रेस, कल्चरल फ्रंट, कल्चरल कॉफ्रेंस नामों से एक सस्था बनी , बढ़ी और विकसित हुई, जो अपने समय (1948–52) के गंभीर साहित्य लेखन प्रकाशन की एक ही प्रतिष्ठित संस्था थी। स्वयं 'नादिम' के कथनानुसार उन्होंने कवितारचना की प्रेरग्ग मां से तथा एक सूफ़ी फ़कीर से पाई थी और वे 'ललवाक' (ललेश्वरी के पद) कृष्ण जू राज़दान आदि की 'लीलाएँ' (कीर्तन–प्रवण गीत) बचपन से ही सुनते आए थे। कलम चलाने का अभ्यास उन्होंने आठवीं नौवीं में पढ़ते समय ही किया था। उन दिनों उनकी कविता का माध्यम उर्दू थी। पर वे अपनी पहली कविता 1940 ई॰ में लिखित "मॉज कॅशीर" (मां कश्मीर) (1940 ई॰) मानते हैं। स्पष्ट है कि कश्मीर ,कश्मीरी भाषा तथा कश्मीरी परंपरा के प्रति स्नेह की नींव उनके हृदय में पहले ही पड़ी थी। विद्यार्थी जीवन में पाठ्य पुस्तकों से बाहर जाकर समकालीन कवियों को पढ़ने की प्रवृत्ति उनकी प्रतिभा तथा रुचि की परिचायक थी। 1946 तक वे केवल उर्दू में ही छिटपुट (और हिंदी में भी कुछ) कविताएँ लिखते रहे। फिर उनकी जो कविता भावी कवि 'नादिम' की परिचायक हो गई,वह थी–" खोल सखी री मन के खिड़की–द्वार" (1946)। उनके अध्यापकों में से कुछ ने पहले ही उन्हें कक्षा में बुद्धिमान तथा प्रतिभासंपन्न छात्र माना था, प्रगतिशील आंदोलन नें तो उन्हें पूरा पहचान लिया । वे कल्चरल फ्रंट के जरनल सेक्रेट्री मुकर्रर हुए। यह उनके कर्मठ व्यक्तित्व की स्वीकृति थी और इसने उन्हें इस विचारधारा तथा आंदोलन का एक स्तम्भ बनाया। पर यह सत्य है कि नियमित तौर से प्रगतिवादी कश्मीरी लेखन की ओर 'नादिम' को प्रेरित करने वालों में उनके कनिष्ट समकालीन कहानीकार सोमनाथ, जुत्शी ,कवि मिर्ज़ा आरिफ, राजनेता गुलाम मुहम्मद 'सादिक', तथा वामपंथी नेता तथा बाद में फ़िज़ीक्स के प्रोफेसर एन॰एन॰ रैना की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

वाचाल 'प्रगति' की ललक

यह सच है कि दीनानाथ 'नादिम' ने प्रगतिशील आँदोलन को उसके तमाम पहलुओं के साथ स्वीकार किया था और मन ही मन वे साम्यवादी थे। राजनीतिक विचारों की साहित्यिक चरित्रार्थता में वे ो विश्वास रखते थे और उन्होंने प्रत्यक्ष

या परोक्ष संकेतों या कहीं कहीं सीधे बयानों में भी मार्क्सवादी घोषणाओं या सिद्धांतों का उल्लेख किया। पर गहरे विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उनका कवि सदा उन के प्रचारक पर हावी होता रहा। कहीं कहीं तो लगता है कि कविता कह चुकने के बाद प्रचार–प्राय सी कोई बात जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए उनकी बहु–उद्धृत कविता "मैं आज नहीं गाऊँगा" ली जा सकती है। इस लंबी कविता के कुल चौदह बंदों में से केवल अतिंम में स्पष्ट साम्यवादी संकेत मिलते हैं। वहां कवि "कलम, दराँती और हथौड़े" से दुश्मन से लड़ने क संकल्प करता है। अंतिम पंक्ति में वह "हथौड़ा, कलम और तलवार" हो जाता है। शेष कविता में बेशक बसंत और बाग़ और प्राकृतिक सौंदर्य से सजे सँवरे कश्मीर को शत्रु के पद दलन से बचाने का संकल्प है और गीतगायन को जंग के घुमड़ते बादलों के समक्ष असमायिक बताया गया है। इसी प्रकार "मुझे पूछना है" कविता में बताते हैं कि मज़दूर ने ख़ून बहाकर अमीरों के लिए ऐश के समान रचे हैं और पूंजीपति घमंड में चूर हैं। कवि अपना लक्ष्य यह मानते हैं कि जनतंत्र का समता का संदेश सुनाएँ वरना इस जग में किसी के पास दौलत और अवकाश है और किसी के पास उपवास तथा निर्धनता का ही खज़ाना है आदि। यहां भी प्रकृति के चित्रों में मनुष्य का प्रतिरूप ज़्यादा उभरता है। "वसंत और शरद" कविता का सौंदर्य उसमें आए संदेश या प्रचार को गौण बना देता है। इस कविता में हवा कलियों को चटकाती फिरती है, बिजली अलकें खोले बादल से आँख मिचौली करती है, निर्झरिनी पायल खनकाती आती है और शिलाओं पर निर्द्वंद्व बिछल जाती है, जैसे कोई बहू मैके की ख़बर सुनकर ससुराल में आँसू छलका रही हो। आखिर में गल्ला बेचने वाले व्यापारी और फिरंगी जादूगर, गरीबों मुहताजों का शोषण करते मिलते हैं। यह कविता आज तक सुनी सुनाई और उदधृत की जाती है तो बिजली, बादल या नई नवेली दुखी दुल्हन के सदा ताज़ा बिंबों के कारण, फिरंगी और मंहगा बेचने वाले के बारे में कवि के संदेश के कारण नहीं। वस्तुतः इस कविता में नयापन इसकी बिंब योजना में है, इसके शब्द तथा छंद संगीत में है। 'नादिम' ने वर्गविभाजन , उच्चवर्गों द्वारा निम्नवर्गों के शोषण और क्रांति की आवश्यकता के बारे में अपने आंरभिक साहित्य में काफी लिखा। न केवल कविता बल्कि अपनी कहानियों "जवाबी कार्ड", "रय" और "गिरो री बर्फ, गिरो! " अपने गीतनाटकों "नेकी और बदी", "प्रियतम और सर्वसुंदरी " में भी उन्होंने सामाजिक विषमता तथा शोषण का चित्रण किया। परंतु उनका प्राकृतिक चित्रण इतना अपूर्व है कि प्रकृति के अंगों के प्रतीक रूप और साभिप्राय सांकेतिक प्रतीक अर्थ गौण हो जाते हैं।

सरल विश्वासी मन

प्रगतिवाद के निर्बाध प्रचारक को उभरने की पर्याप्त गुँजाइश न देने के पीछे कुछ और कारण थे, जो 'नादिम' के सांसारिक–व्यक्तित्व में मौजूद थे। सब से बड़ा कारण यह था कि राजनीतिक सिद्धाँत दरकिनार, अपनी दैनंदिन ज़िंदगी की कठिनाइयों से जूझने में वे ऐसे लगे थे कि ख़ुद उनके सहकर्मियों सोमनाथ ज़ुत्शी, तथा अब्दुल ग़नी नमतहाली के अनुसार कई महत्वपूर्ण संस्थागत सरगर्मियों में भाग लेने के लिए वे उपलब्ध नहीं होते थे। दूसरे यह कि रोज़गार जो उन्हें मिला वह उन्हें आधे संतोष से ज्यादा कुछ न दे सका। अपनी लगातार अभावग्रस्तता का ज़िक्र उन्होंने कई बार व्यक्तिगत साक्षात्कारों में किया है। वे काफी पढ़े लिखे ही नहीं थे काफी सचेत तथा संवेदनशील दृष्टि के मालिक थे। योग्यता तथा पात्रता के बावजूद स्वयं से कम और अधकचरे प्रत्याशियों को बेहतरीन ज़िंदगी के अवसर मिलते देखे ,पर आत्माभिमान के कारण अपने समय के समर्थ लोगों के सामने कभी हाथ नहीं फैलाया। न अपने लिए न अपने बच्चों के लिए ,जो हमारे कनिष्ठ समकालीन हैं और जिनकी प्रगति और विकास का क्रम हमने देखा है। 'नादिम' का प्रगतिवाद पर विश्वास उनके सरल विश्वासी मन के कारण था । समाजवाद और क्रांति उनका सपना था, सहज सपना ,केवल अपने लिए नहीं, अपने पूरे समाज तथा सब सामाजिक अवसरहीन लोगों के लिए। फिर यह भी नहीं भूलना होगा कि उन दिनों ऐसा साफ दिखाई दे रहा था कि सामाजिक क्रांति के फलस्वरूप रूस तथा चीन में अवसर विहीनों के लिए स्वर्ग उतर आया है और जैसा कि मार्क्स तथा लेनिन ने चाहा था, *सर्वहारा* वर्ग के हाथ में वहां वास्तविक सत्ता आ गई है, जो सिद्धाँततः न्यायी समद्रष्टा तथा मानववादी होगी । सर्वहारा का भी शोषक एक और सर्वहारा होगा तथा उसकी सत्ता पूँजी के अधिक शक्तिमान तंत्र के सामने ताश के पत्तों की तरह शक्तिहीन साबित होगी, ऐसा सोचने वाला 1940–50–60 में क्रांतिविरोधी माना जाता था। 'नादिम' स्वप्नजीवी थे और अन्य स्वप्नजीवियों की तरह यथार्थ के कठोर पक्ष को भी स्वप्न में कोमल बनाकर देखते थे। अन्यों में से तो कई स्वप्न और यथार्थ के संघर्ष में अपना भविष्य बचाते हुए आगे बढ़ रहे थे, जबकि नादिम ऐसा न कर सके। परिणामतः उन की स्वप्नदर्शिता, दूरदर्शिता साबित नहीं हो सकी। फिर भी स्वप्न उनके लिए सदा महत्वपूर्ण रहा यद्यपि उनकी अपनी ज़िंदगी उसी ढर्रे पर चलती रही।

गौरवमय अतीत बनाम जीवित वर्तमान

जिन प्रगातिवादियों ने परंपरा और अतीत को थोक माल की तरह वर्तमान राजनीतिक सिद्धांतों पर कसकर व्याख्यायित किया और इस तरह परंपरा का विकृत रूप ही पेश किया, नादिम उन को सुनते गुनते तो थे पर उनसे उन्होंने अपनी व्यक्तिगत दृष्टि को फिसलने नहीं दिया। खुद कहते है : "शांति प्रियता और मानवमित्रता, अपने वतन की सुंदर घाटियों, संगीतमय निर्झरों और श्रमिक किसान की आकर्षक मुस्कानों, अपने अतीत की शानदार सांस्कृतिक परंपरा और अपने यहां के बंधुत्ववाले सूफीमत, आत्मज्ञानी साहित्य और निर्दोष लोकगीतों और लोकसंगीत से पा चुका हूं। इसलिए शांतिप्रियता को अपनी कविता में कोई नवीनता नहीं मानता बल्कि अपनी पंरपरा का दुहराव मानता हूँ।...........असफलताओं के बावजूद भी ज़िंदगी के हाथों से आशा का दामन नहीं छूटता। रात की घनी अंधियारी भी सुबह की उम्मीद पर मुस्कराती है.........उस सुबह की उम्मीद से मैं बचपन से परिचित हूँ.........मैंने उसे अपनी स्वर्गीया माँ के गंभीर माथे पर देखा है जब वह मिट्टी के दिए की रोशनी में चरखे पर से ऊन की आखिरी अंटी अगले रोज़ बेचने के लिए उतारती थी और चरखा उठा लेने के बाद मुझे अनायास चूमती थी........." नादिम का स्वप्न उसके अपने अतीत और अपनी परपंराओं को पूर्णरूपेन जीने के आधार पर टिका था और आगे चलकर जब उनकी कविता में स्वप्नभंग की प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी तो उन्होंने अतिवादियों की तरह कोई आत्महंता मुद्रा धारण नहीं की। इतिहास और पंरपरा में जीवित तत्वों के प्रति सजीव रुख़ धारण करने वाला प्रगतिवादी कवि था दीनानाथ नादिम।

सहज भाषा, निर्व्याज दृष्टि

नादिम की कविता के दो प्रमुख तत्व थेः– उनका कश्मीर के सौंदर्य के प्रति अनवरत आकर्षण–वस्तुतः एक नैसर्गिक लगाव तथा कश्मीरवासी के मन में मौजूद मानववाद की स्वीकृति जो कुत्सित सांप्रदायिक सैलाबों के बावजूद बहुत हद तक अदूषित रह सकी थी । यह ठीक है कि उनकी आरंभिक कविताओं का प्रकृति सौंदर्य तथा प्रकृति की गोद में पला भोला मनुष्य तभी प्रमुख और विशिष्ट हो उठता है जब आर्थिक शोषण का विरोधी रंग उसे लीलने लगता है। पर सारे काव्य को गहराई से देखने पर नादिम का प्रकृति सौदंर्य स्वयं में ही पूर्ण दिखता है, क्योंकि नादिम की दृष्टि और प्रकृतिवादी कवियों से अलग है। ध्यान से देखा

जाए तो उनके दो पूर्ववर्ती अहम कवियों 'महजूर' तथा 'आज़ाद' को प्रकृति चित्रण सूक्ष्मदर्शी संवेदनशील कवि तो बनाता है पर मौलिक नहीं बनाता। नादिम का प्रकृति चित्रण उन्हें मौलिक सूझ देता है, उनकी कविता को असामान्य और अपूर्व बना देता है। आलोचकों का मानना है कि नादिम की प्रतिभा कश्मीर के सौंदर्य के अनदेखे पहलू को अपूर्व भाषा में प्रकाशित करती है। कश्मीरी काव्य को नादिम की सबसे बड़ी देन है ऐसी भाषा जो हमें कभी अनपढ़ सूफियों की ग्राम्यता की याद दिलाती है तो कभी लोक गायकों की टटकी नव्यता की। यह आधुनिक कश्मीरी काव्य के लिए बड़े भाग्य की बात थी कि आधुनिकता की राजनीति सम्मत और पश्चिम प्रेरित नवीनता के वातावरण में इसे नादिम की निर्व्याज सहज भाषा मिली और (कहीं कहीं प्रगतिवादी नारेबाज़ी के बावजूद) इस कविता में निर्व्याज कश्मीरीपन बना रहा। नादिम की प्रकृति अनछुई और क्वाँरी लगती है। यह देखकर अचरज होता है कि गांवों में जन्में और कार्यरत महजूर तथा आज़ाद की अपेक्षा इस शहरी कवि में ऐसी अछूती शब्द संपदा कहां से आई,मुहावरा इसने कहां पाया। लोक वार्ता के सदाबहार चरित्रों की सी जीवंतता यह कवि अपने काव्य–चरित्रों जैसे झील के माँझियों, कुंजड़नों, ग्रामीण बस्तियों के भोले भाले किसानों, मज़दूरों, शहरों की मासूम नवविवाहिताओं, लाम पर गए सैनिकों की अल्हड़ क़िशोर बीवियों में कैसे पैदा कर सका। यह इस कवि की मौलिकता थी, जिसने परंपरावादी प्रयोग की निर्जीवता कम की तथा निजी मुहावरे में जान डाल दी। वस्तुतः 'नादिम' का सरोकार मामूली आदमी के साथ था, जो अभावग्रस्त था।यह मामूली आदमी प्रगतिवादी माप की 'जनता' का सदस्य नहीं था, एक सामान्य निस्सहाय़ जन था, जैसे अवसरवादी राजनीति के सामने खुद "नादिम" हो। पर नादिम प्रगातिवादी कवि ज़रूर थे। उन्होंने भी राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं का हल, सिद्धाँततः 'जनता' के साथ एकात्म होने तथा 'जनता' से प्रेरणा पाने में बताया। पर इस तरह के जनवाद को वे मुक्त लोकतंत्र से ज़्यादा महत्व नहीं देते थे। साम्यवाद ने जिस लोकतंत्र का समर्थन किया वह मर्यादित तथा एकदल समर्थित लोकतंत्र था। नादिम ने यद्यपि लोकतंत्र की वैसी व्याख्या नहीं की, पर अभावग्रत जन का अंतिम कल्याण जिस लोकतंत्र में माना वह निस्संदेह बलशाली पार्टी द्वारा अनुशासित, सीमित लोकतंत्र नहीं था। इसका प्रमाण यह है कि 'नादिम' ने 'लोक' को उसके अपरिवर्तित संस्कृति–सिंचित विकास के साथ रूपायित किया। विशुद्ध साम्यवादी 'लोक' ऐसा हो तो तात्कालीन रूसी तथा चीनी परिभाषाओं के अनुसार वह अतीतोन्मुखी'–संस्कृति अभिमुखी" घोषित

किया जाता। विशेषकर उस समय की चीनी 'सांस्कृतिक क्रांति' की ठेठ परिभाषाओं में नादिम ठीक नहीं बैठता। नादिम ने तमाम मानव उपक्रमों को ससम्मान स्वीकृत किया। क्रिसमिस पर भी कविता लिखी तथा मदरटेरेसा पर भी। नातें लिखीं और अल्लाह की तारीफ़ में मनक़बतें और मुनाजात लिखे। जवाहर लाल नेहरू के शांति प्रयत्नों की खुल कर प्रशंसा की और वियतनाम़ तथा मिस्र के योद्धाओं की प्रशंसा में कविताएं लिखीं। कालूसान्याल के क्रांतिकारी व्यक्तित्व को कविता का विषय बनाया और महजूर के प्रति अपनी श्रद्धा के फूल समर्पित किए। उनके इस प्रकार के उपक्रम को अलोचकों ने अवसरवाद बताया, पर 'नादिम' जन जन तक अपने समदर्शी दृष्टिकोण को पहुँचाने के अलावा कोई निहित स्वार्थ नहीं रखते थे, इसमें कोई संदेह नहीं।

ज़िदंगी में अडिग विश्वास

नादिम ने मृत्यु के मुकाबिले में जीवन को खड़ा कर के इसके सुंदर असुंदर रूप को रेखाँकित नहीं किया जैसे सूफ़ी कवियों ने किया था, जिस की मूल प्रेरणा उन्हें इस्लामीं जीवन. दर्शन से मिली थी। उस दर्शन में मृत्यु की अवश्यंभाविता जीवन को नियमित करती है। नादिम तो जीवन के गायक थे और आशा करते थे कि सरलता की पृष्टभूमि पर खड़ा जीवन तमाम सामाजिक कुत्सितताओं पर विजयी होगा। यह और बात है कि सामाजिक विषमताओं और उनसे ज़्यादा महत्वपूर्ण चीज़ों से प्रेरणा व्यक्ति–कवि व्यक्तिगत संवेदना के कारण पाता है–इस सत्य का स्वीकार उन्होनें बाद में अपनी रचना में किया। वास्तविक कवि नादिम वस्तुतः वहीं उभरते हैं।

कड़वे मीठे 'हादसे'

"मिश्री और कड़वा 'व्यन पात' " नामक कविता नादिम ने 1959 ई॰ में लिखी और इसमें पहली बार स्वीकार किया कि ज़िंदगी के मीठे अनुभव कोमूलतःकड़वेहो सकते हैं। उन्होंने मधुरतम अनुभव यौन रंजित अनुभव को माना और उसे विविध बिंबों से चित्रित किया। इसमें न ही कोई पूर्वाग्रह है और न ही कोई अनिवार्य उम्मीद है जो दर्द और निराशा भुलाने का पाठ पढ़ाए । दृश्यचित्रण की अपेक्षा बिंबचित्रण की ओर रुझान तथाकथित 'आधुनिकतावाद' की स्वीकृति का पहला कदम था जो समकालीन भावबोध का साक्ष्य बनकर नादिम में प्रकट हुआ। सामाजिक वैषम्य के क्रांतिकारी नारे में उत्तर देने की व्यर्थता का बोध

उनकी परवर्ती कविताओं में जगह जगह उभरता है। "तुम्हारी कब्र के पत्थर के पास" में स्वीकारतें हैं कि कई अवसरों पर गुस्से के घूँट पीकर रह जाना पड़ता है।" सॉनेट (मुझे अब इस जगह बैठे हुए) में संबोध्य को नया स्वप्न गढ़ने को ज़रूर कहते हैं, पर साथ ही संवेदनशील जीवन के उपेक्षित होकर सूख सड़ जाने का सत्य भी प्रकट करते हैं। उनकी छोटे उपेक्षित विषयों पर लिखी छोटी कविताएँ जैसे 'धुंध', 'तिनका', 'चोर' , 'पुकार' , 'ज़िंदगी' इसी समय चार पाँच वर्षों में रची गईं। ऐसी कविताएँ केवल उनकी प्रयोग शीलता का परिणाम नहीं, ये नवीन के प्रति उनकी रोमानी अभिवृत्ति_का पता नहीं देतीं जैसा कि कुछ आलोचकों का मानना है, बल्कि उन में जीवन की लघुताओं को, महती प्रासंगिकताओं से अलग करके देखने की प्रवृत्ति की परिचायक हैं। इन कविताओं में अंगारों के बदले टूटी फूटी "कांगड़ी में बर्फ की सिल रखी हुई है" , धुंध है जो "सब की मत मार देती है", जाड़े की ठिठुरती रातों में घासके तिनके की "मेरी जैसी हालत हो जाती है" जब उसमें "कटुता तथा झूठी शान" भर जाती हैं आदि आदि। छोटी कविताओं की इस रचनावधि में ही नादिम नें 'हादसे' नामक पद लिखे। ये स्वतंत्र पद है, कहीं आठ पंक्तियों के कहीं दस पंक्तियों के पर सब के बीच एक ही सिलसिला है लघुताओं के वैशिष्ट्य को उजागर करने की प्रवृत्ति का। अधिकतर आलोचकों ने इन 'हादसों' को न केवल नादिम की काव्य यात्रा में बल्कि कश्मीरी काव्य में भी महत्वपूर्ण मोड़ माना है, 'नादिम' की कलात्मक नवीनता के कारण। पर ये लघु कविताएँ केवल बिंबचित्रण के कारण ही नई हैं, ऐसा नहीं। इन में हिंदी की नई कविता की तरह लघुमानव और लघुता के प्रति संवेदना है, जो आगे चलकर कवि का, व्यक्तिमन की खोज में मार्गदर्शन करती है। पर इतना याद रखना होगा कि कवि कभी उस तरह के आत्मानुसंधान या आत्मलिप्तता में नहीं खोजाते हैं, जैसा दर्शनप्रवण वैयक्तिक कविता में होता है। वे कभी भी खुद को समभोगी सहभागी मनुष्य से अलग करके नहीं देखते और यही नादिम का वैशिष्ट्य है। हमें यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि नादिम बुनियादी तौर पर सर्वात्मवादी मानववादी कवि थे और सदा बने रहे।

नैराश्य और ऊलजलूलपन

यदि नादिम की कविता का पहला विकास उन की प्रतिबद्ध प्रगतिशीलता में हुआ , तो इस विकास का दूसरा चरण 'हादसों ' की रचना (या पुनर्रचना) के समय हुआ। कश्मीरी में 'हादसा' के दो अर्थ हैं। इस शब्द का कश्मीरी विकृत रूप

है 'हॉरिसात' । (आपबीती) 'हादसा' शब्द मूल तत्सम अर्थ (दुर्घटना) में भी इस्तेमाल होता है। हादसे, दुर्घटनाएँ इन्सानों की दुनिया में इनसानों द्वारा जाने अनजाने होती हैं, जबकि नादिम की ये लघु कविताएँ किन्हीं ऐसी घटनाओं के रागात्मक विवरण देती हैं जो मामूली हैं, आकर्षक हैं और सुंदर भी। इन की दो विशेषताएं हैं–वस्तु–थीम की दृष्टि से (चूंकि इन्हीं में नादिम व्यापक पारंपरिक विषयों से सीमित निजी वस्तुओं पर आते हैं)। एक है अवसाद, जो अकारण है, किसी सामाजिक नियम का परिणाम नहीं। दूसरी है अनायास ऊलजलूलपन–स्थितियों की क्रम–तर्कहीनता (एब्सर्डिटी) विवेच्य मनुष्य नहीं, वस्तुएँ हैं– गुलदाऊद और गेंदा, जलधारा, रातकी खामोशी, पत्ता, अकेला सफ़ेदा और ऊपर से उड़के जाती हुई कौओं की पंगत , हवा का झोंका , बादल का टुकड़ा और बिजली , सड़कें और गलियाँ, टूटी हांडी ,चिथड़ा चिथड़ा हुआ जूते का एक पैर, मैना और गोबर का कीड़ा, तितली और झड़ता सफ़ेदा। ये प्रकृति के अवयव सौंदर्य के कारण कवि का ध्यान आकृष्ट नहीं करते, बल्कि इनमें वह एक बेबस नैराश्य का अनुभव करता है।ये कभी मौसम तो कभी बरसात, बाढ़ या अन्य नियति संयोगों से कभी अपकृत तो कभी उपकृत होते हैं या कभी विकृत भी होते हैं और इनमें अपनी स्थिति को बदलने का प्रतीकात्मक जोश नहीं।

यह अव्यवस्थित दुनिया

दूसरी विशेषता ज़्यादा अहम है क्योंकि वह नादिम में आधुनिक भावबोध की पहचान कराती है। स्थितियों की तर्कहीन प्रस्तुति से प्रकृति, इन कविताओं में अपनी अराजकता का ज़्यादा परिचय देती है, नियमबद्धता का कम। इन में देखना यह है कि कहीं तो कवि कहे बग़ैर अपनी तुलना इस तर्कहीन प्रक्रिया से करता है तो कहीं कह कर अपनी वेदना प्रकट करता है। गर्मियों में पेड़ों को खिले रहना चाहिए, सफेदों को पत्तों से लदे रहना चाहिए, पर बरसात उन्हें नंगा कर देती है। दुख की बात है। पर चोटी के कुछेक बाल बचे रह गए सफेदे की खोपड़ी पर। कुछ भी कहो ऐसे में, सब बेकार है आखिर हम बतौर राहों के यात्री के इस स्थिति के बारे में कह भी क्या सकते हैं। हंस भर लेगें और बस। हर एब्सर्डिटी पर हँसा जा सकता है। वैसे ही जैसे हांडी के टूटकर ठीकरों में बदल जाने पर तथा आखिर में बच्चों के खेल में उठाए पटके जाने पर, स्थिति की अनाम विचित्रता पर हँस सकते हैं। टूटे जूते के पैर को कभी कुत्ता दांतों से काट खींचकर फाड़ने में असमर्थ रहता है, तो कभी जूता नाली में भीगने लगता है और

उसकी जन्मों की प्यास बुझाने की संभावना पर कवि जैसे कोई बहुत सत्य कहता हो या मामूलीपन में बड़े सत्य की संभावना ढूंढ़ने वालों का उपहास कर रहा हो। हवा का झोंका बड़े दमखम से दावत पर निकला तो घर से निकलते ही तूफानों की जकड़ में आगया–इसकी तो ज़रा भी उम्मीद नहीं थी उसे। इसलिए बहते पानी की लकीर तिनके का ताज सिर पर लेकर लेकर उतरी तो एक अज्ञात झटके से तिनका उथले की रेत पर जा अटका और पानी जाने किधर बह चला। क्या सोचा था और क्या हो गया। यह दुख न रुलाने वाला है न क्रांति पैदा करने वाला। इस पर तो हँसी आती है–कैसे द . हो रहा है इस अबूझ दुनिया में। सुबह की किरण कोहरे के पास पहुंच कर प्राणत्याग करती है तो कोई बहुत बड़ा संदेश नहीं देता कवि। सिर्फ यह बताता है कि यही होता है। बस ऐसी ही है यह अर्थहीन दुनिया।

अतिवाद से असहमति

सातवाँ दशक शुरू होते होते कश्मीरी साहित्य में आधुनिकता की चेतना न केवल कविता में दिखनी लगी बल्कि कहानी नाटक में भी यह चेतना आई। कविता में इस प्रकार की चेतना के दो प्रस्फुटन 'नादिम' तथा 'राही' (रहमान) में दो तरह से मिलते हैं। 'नादिम' में भी यह कवि के ऐकांतिक व्यक्तित्व से उभरी जैसे 'राही' में, पर इसमें निरपेक्ष वैयक्तिकता नहीं आई। राही की आधुनिकता कभी कभी इतनी वैयक्तिक हो गई कि कवि के नितांत निजी संदर्भों के बगैर पूरा अर्थ संप्रेषित नहीं करती। कश्मीरी में चूंकि ग़ज़ल अभिव्यक्ति का एक सफल तथा प्रभावी माध्यम रही है इसलिए आधुनिक चेतना का प्रादुर्भाव गज़ल में भी हुआ और उसी ने इस दिशादशा–परिवर्तन का पता दिया। ग़ज़ल के क्षेत्र में इस परिवर्तन को लाने का श्रेय अमीन 'कामिल' को है और यह सातवें दशक में प्रकट हुआ। राही और कामिल, कश्मीरी कविता के इन दो समर्थ नामों के साथ यह तथ्य जुड़ा हुआ है कि इन्होंने प्रगतिवाद से घोषित रूप में किनारा कर लिया तथा उसे कश्मीरी कविता के लिए विषयसंबंधी–संकीर्णता का युग माना। 'नादिम' ने ऐसा नहीं किया लेकिन यह सत्य है कि आधुनिकता तथा युगबोध–परिवर्तन की समझ की कमी इनमें ज़रा भी नहीं। यह भी कह सकते हैं कि प्रगतिशीलता के कुछ धनात्मक मूल्यों को लेकर जो वे चले तथा साथ ही उस विचारधारा के अतिवादी स्वर और विश्वासों की उपेक्षा की। इस कारण वे अपना अलग व्यक्तित्व बनाए रख सके। इस से वे कुछ हिंदी कवियों जैसे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अथवा नागार्जुन के निकट पड़ते हैं।

समानार्थक शब्दावली में नवीनता

काव्य यात्रा के इस परिवर्तन काल में नादिम की भाषाई विशेषता में एक बड़ा परिवर्तन आया। अपनी पूर्व कविता में जो उनमें दोहराव पाया जाता था और समतुल्य शब्दों का सिलसिला बढ़ाते हुए वे जो कविता का भाव पटल फैलाने की कोशिश करते थे, वह अब छोटा तथा अधिक सारगर्भित होने लगा। यह कवि का सामर्थ्य था कि दोहराव और समतुल्यता की बहुतायत के बावजूद उनकी पूर्वकालिक कविता व्याख्यात्मक नहीं हुई थी। कारण यह कि उनके पर्यायवाची शब्द, शब्द न होकर अर्थ होते थे। शब्द एक स्थिति को उकेर कर पाठक को आसंगों में ले जाते थे। चेतना की (अंतस्तल की नहीं, उपरिस्तल की) लहर की तरह आसंगों का एक सिलसिला जुड़ जाता था उनकी उन कविताओं में । प्राकृतिका प्रंसग हो तो 'आबशारं', 'पोशिज़ार' 'शालामार' के साथ 'बालयार' भी जुड़ जाता था जो प्रकृति में मनुष्य को पैठा कर उसे और लुभावना बना देता था। जहां दो या दो से अधिक पर्याय होते थे, वहां दुहराव नहीं लगता बल्कि स्थिति की व्यापकता उद्दिष्ट होती थी। उदाहरणतः "मैं आज नहीं गाऊँगा" में कवि एक जगह बताना चाहते हैं कि मैं वह दिन देखना चाहता हूं जब भय कहीं न रहे, न ज़मीन पर न जड़ में, न चेतन में । कविता का लहजा भाषण–सम्भाषण का है और इसलिए 'खाह' और 'डूर्य' (खेत और क्यारी) 'कोह' और 'बाल' (पर्वत और पहाड़) 'गुल' और 'पोश' (फूल और पुष्प) जैसे पर्याय होते हुए भी निरर्थक दुहराव पैदा नहीं करते। ऐसी कविताओं में इस प्रकार का पुनर्कथन अनावश्यक नहीं लगता।

संक्षेप, सार, व्यंजना

सातवें दशक और बाद की 'नादिम' की कविता में भाषा की दृष्टि से संक्षिप्तता और सारगर्भित सुनिश्चितता के गुण आए। इसका सब से बड़ा उदाहरण उनकी 'हादसे' लघु कविताएं हैं। इनमें प्रतीकात्मकता ढूंढ़ी जा सकती है, पर उससे पूर्व ये अनाम उपेक्षित स्थिति का महत्व स्थापित करती हैं कुछ संकेतों में कुछ चित्रों –कुछ बिंबों में । 'नादिम' ने जो व्यक्तियों संबंधी कविताएं लिखीं या कुछ धार्मिक पर्वों से संबधित रचनाएँ कीं, उनकी भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह विशेषता है कि वे मुख्य विषय का बहुत कम खुलासा करती हैं, संकेतों में बहुत कुछ कहती हैं। उदाहरणतः 'क्रिस्मस' में ईसा मसीह के जन्मदिन का ज़िक्र नहीं, 'मेराज' में हज़रत मुहम्मद का उल्लेख नहीं। 'मुनाजात' कविता

का शीर्षक बदल दिया जाए तो शायद ही इसे 'अल्लाह' की प्रशंसात्मक या निवेदनात्मक कविता कहा जाए। 'हुसैन' में मात्र अंतिम शब्द हुसैन है। इन कविताओं में विवरण नहीं है, न ही कथात्मकता है, यद्यपि कथात्मकता, नादिम की कविता को संपूर्णता में देखा जाए तो, उन का एक प्रमुख गुण है। इन कविताओं में संक्षिप्तता और संकेतात्मकता है, जिससे भाषा की ध्वन्यात्मकता उभरती है। कुछ में व्यंग्य प्रमुख हो उठता है। व्यंजना के लिए भी तथा स्थिति में विरोधाभास उभारने के लिए भी।

मानव–साक्षेप व्यंग्य

नादिम का व्यंग्य केवल सामाजिक विषमता उभारने के लिए नहीं होता बल्कि सामाजिकता से निरपेक्ष मूल मानव स्थिति में वह निहित होता है। इस प्रकार की मानवस्थिति सदा सकारण नहीं होती, इसलिए न उसका विश्लेषण हो सकता है न उसके आधारभूत वैषम्य का कोई शीघ्र समाधान दिखता है। ऐसी स्थिति संसार की ऊलजलूलता को ही उभारती है। 'बारान कोट' में दिवंगत व्यक्ति की एक ही पहचान है वह यह है कि वह जो कोट पहना करता था, उस पर दर्ज़ी की लेबल होगी, जो उस कोट तथा कोट पहनने वाले से ज्यादा महत्वपूर्ण हो उठती है। यह विरोध तब और तीक्ष्ण हो जाता है जब यह पता चलता है कि वह व्यक्ति कोई कवि था जिसकी मृत्यु के बाद उसके लेखन पर अनुसंधान करने वाले उसकी कोई निशानी साहित्यिक संग्रहालय में रखना चाहते हैं। व्यक्तित्व के गरिमाविहीन होने पर यह करारा व्यंग्य है। "चोरो!" नामक कविता में लालसा और स्वार्थ के जाल में फँसे जाने की मानववृत्ति पर जैसा व्यंग्य है उसे हल्के हास्यात्मक लहजे में प्रस्तुत करने से पाठक बगलें झाँकता रह जाता है कि स्वार्थांध हठ का शिकार वह भी रहा है और रहता है। पेड़ पर एक नाशपाती का फल अभी बचा है और यह मूर्ख फल की ज़िद, है। उसे तो आदमी के लिए हर सूरत में छन गिर के नीचे ज़मीन पर आ जाना चाहिए था। रद्दी खरीदने वाला ("रद्दीवाले की पुकार") ही अब समाज को जगाए रखने वाला एक बचा है क्योंकि बाकी नाम के बुद्धिवादी, राजनीतिज्ञ, विद्वान और मनीषी हैं। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं यदि ज़मीन के रास्ते अब मकानों के रोशनदानों तक बढ़ते हैं (और झांकते हैं, भीतर को बाहर कर देते हैं) भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने ही गीत बेचकर व्यक्ति के अवस्तरीकरण की बात की थी, यहाँ रद्दीवाला हर उस चीज़ को रद्दी के मोल खरीदना चाहता है, जो कभी

लोगों के पास मूल्य के रूप में मौजूद रखी जाती थी। मूल्य अब कहां हैं ? किसे उनसे संबंध बनाए रखने में रुचि है ? "वह भी दिन था" में किसी व्यक्ति (वह 'गांधी' हो सकता था या कोई क्राँतिकारी) ने दीया जलाया : उसकी रोशनी ने दुनियाभर को रोशन किया। हमने भी उससे अपने खून में ऊष्णता पैदा की। फिर कोई उस रोशनी को अपने घर लूट ले गया और हम वैसे के वैसे रहे। हताशा, है। कोई सुधार नज़र नहीं आता। "समझौता" "मक्खियाँ" "रोग" "रास्ता", "अचानक अभी अभी", जैसी कितनी कविताओं में हताशा छाई हुई है। पर यह नहीं समझना चाहिए कि नादिम की हताशा आत्मघाती थी। वह ऐसी हो भी नहीं सकती थी, क्योंकि जिस पृष्टभूमि से नादिम आए उसकी वैसी परिणति असंभव थी।

सुबह का भ्रम

'नादिम' की जीवनाभिवृत्ति इस गज़ल की इन पंक्तियों में प्रकट हुई है–"

जाने कौन सुबह तक बचता है
हम भी देखेंगे
अभी रात बाकी है, इंतज़ार बस करना है।

सुबह आएगी पर उसे देखने के लिए कौन बचेगा? इस समय सुबह के बारे मे सोचना ख़ास उत्साह जनक नहीं। फिर क्या स्थिति है हमारी ? बस जीते रहना और देखना कि रात क्या करवट बदलती है। रात के किसी आगामी बदलाव के बारे में हम कोई अटकल नहीं लगा सकते, न सुबह की संभावना के स्वप्न में रात का होना उपेक्षित कर सकते हैं।

स्पष्ट है कि 'नादिम' में अब कोई दो टूक हल नहीं, न कोई अड़िग आस्था। कवि की सोच का यह पक्ष उन के आरंभिक विश्वास से बिल्कुल भिन्न है। उन्होंने बाद में, अपने लेखन तथा जीवन के अंतिम वर्षों में ऐसी कोई बात नहीं कही, जिससे उनकी यह बदली बदली सी सोच प्रकट होती हो, पर उनकी कविता का लहजा एकदम भिन्न लगता है। कविता कवि के विचार तथा अभिवृत्ति का सब से विश्वस्त वाहन होती है। न केवल उपर्युक्त गज़ल में बल्कि उनकी अन्य कविताओं में भी ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे साफ लगता है कि कवि 'नादिम' अब कोई अतिवादी विचार नहीं रखते। उनकी आठवें दशक की गज़लों में ऐसे कितने शेर हैं जो इस प्रकार के बदलाव की ओर इशारा करते हैं। अतिवादी विचारों के मुकाबले में इसे उनका परिपक्व उदात्तीकरण कहा जा सकता है।

जाने कभी कि भरते भी हैं घाव मेरे
अभी गुलों को केवल विष ही पिला गए।

बटता रहा जिंदगी भर मैं एक तमन्ना छोटी अपनी
अब जो मेरा समय आ गया जीर्ण हो गया मेरा धागा।

जब मैं आया तो रोया, जब जाऊँगा तो लोग मुझे रोएंगे।
(वास्तव में) शब्दों के अर्थ ही खो गए हैं।
अब न कोई आरंभ और न अंत ही समझ में आता है।

होता रहा सुबह का भ्रम हमको अब तक
अनायास दिन ढले पूर्व ही शाम हुई।

नादिम के इस स्वर को उनका प्रतिनिधि स्वर कहा जा सकता है। यह उनके जीवन के अंतिम पच्चीस वर्षों का स्वर है जब उनमें परिपक्वता भी आई थी और दुनिया भी क्या से क्या हो गई थी। नादिम की कविता में चूंकि कश्मीर की प्रकृति वाचाल होकर उभरती है इसलिए अपनी अधिकांश बात वे प्रकृति के माध्यम ही से करते हैं। प्रकृति कभी असुंदर नहीं लगती, यद्यपि प्रकृति के पारंपरिक व्यवहार को कवि अपनी भाषा में अनुकूलित कर अपने संदर्भ में इस्तेमाल करता है। प्रकृति नादिम में हमेशा ताज़ा और नवीन होती है, पर इस कारण मन के अवसाद या विषन्नता को ढक नहीं देती। "ग्रहण" कविता का उदाहरण लें। ग्रहण में सकते में आए वातावरण तथा मन का वर्णन करके कवि असामयिक अंधेरे में छाई बेबसी तथा असंमजस की ओर संकेत करते हैं। जटायु के अन्वेषी प्रयासों की अनिश्चित परिणति से शंकित कवि राम के सच के बारे में चिंतित होता है। अब छायाओं का बोलबाला है। छायाएँ हुए को अनहुआ करती हैं और सुंदर को असुंदर बना के छोड़ जाती हैं। भ्रम, चाहे थोड़ी ही देर हावी रहे अवास्तविकता की यथास्थिति पैदा करता है। कवि को ऐसी मनस्थिति में लगता है कि "जर्जर छाया एक, यह मेरा शरीर है, यह मैं हूँ।" इस तरह की कविताएँ कवि नादिम की अपने आप से एक सहज वार्तालाप का रूप लेती हैं, भले ही वे उपर से केवलदृश्यात्मक लगती हों। इसी दौर की उनकी एक और कविता है "आंधी"। इसमें कवि अपने आप को संबोधित भी करते हैं और इस प्रकार के आत्मप्रकाश के क्षणों में खुद अपने द्वारा स्थापित

परिभाषाओं से दूर जाते हुए प्रतीत होते हैं। देखिए इंतजार करने तथा उम्मीद जगाए रखने की बात क्या हो जाती है, उनके मन के समकलीन विश्लेषण में:—

तन रे , मेरे मन रे, सिमट गए हो
तो सिमटते जाओ.........
तेरा पिघलना (झड़ जाना)
उड़ेगा, शून्य (आकाश) चढ़ेग . पर तुझे मिलेगी मुक्ति?

..

तुझे इंतजार करना है, करना है,कर

वक्त की आँधी चल रही है

यह तुम्हें ज़मीन में अभी गाड़ देगी..............

मोहभंग के ऐसे क्षणों में कवि की प्रतिभा का वास्तविक स्वरूप उभरता है और वह स्वयं अपनी सोच से प्रश्न करता है। और जैसा उन्होंने खुद कहा था कि यही है ज़िंदगी, यही है नियति, इसे कुछ और ढालने से ज़्यादा बेहतर है इसे समझना तथा इसकी न्यूनताओं को प्रकाशित करना।

बड़ा चाहिए कड़ा कलेजा
मुट्ठी में दिल काबू करना
कूट कुचल चंचल पारद को बस में करना।

लोकप्रियता के सूत्र

कुछ आलोचकों ने नादिम के "पारद–लेखन"(तथा विकास) के पीछे मुशायरों में उनकी लोकप्रियता से उनके दिशानिर्देशित होने की बात की है। पर ऐसा किसी भी गंभीर रचयिता के विकास में नहीं होता। 'नादिम' मुशायरा बाज़ कवि नहीं थे, और दर्शकदीर्घा का मनोरंजन करने के लिए नहीं लिखते थे। ऐसा होता तो वे कश्मीरी कवियों की आधुनिक चिंतक रचयिता पीढ़ी पर दूरगामी प्रभाव नहीं छोड़ सकते थे। उनकी अपनी गहनतर जीवन–दृष्टि तथा लेखन–कौशल की बात हम ने की है। उन्होंने घाटी में समय समय पर होने वाले सामाजिक धार्मिक समारोहों में अपनी कविताएँ ज़रूर प्रस्तुत कीं पर उन कविताओं को देखिए।

उन में अंधविश्वास की स्तुति या व्यक्तित्व का अंधगुणगान नहीं, बल्कि मानवता के लिए सुझाए गए आदर्शों को स्वीकार किया गया है। मनुष्य, विषमता से सताया हुआ अबोध मनुष्य नादिम की कमज़ोरी था और मनुष्यों के समूह जिन से प्रेरित हुए हैं उन पर कवि ने विश्वास प्रकट किया। वह व्यक्तित्व अतिवादी नक्सली कालू सान्याल हो सकता है और मध्यममार्गी अहिंसावादी महात्मा गांधी भी। मार्क्सवाद तथा गांधीवाद का अंतर्विरोध कवि की ज़ेहन में गांठ डाल गया होता तो वे समान सम्मान से दोनों के प्रति श्रद्धा प्रकट नहीं कर सकते। इस श्रद्धा में ईमानदारी थी। जभी तो कवि के समकालीन और कश्मीरी कविता के एक वरिष्ठ स्तंभ मिर्ज़ा 'आरिफ' ने लिखा है कि जिस मुशायरे में 'नादिम' होते, वहां श्रोताओं को उनको छोड़कर कोई अन्य कवि दिखाई ही नहीं देता था। यह स्थिति नादिम की काव्य यात्रा के आरंभिक दिनों में जैसी थी अंत तक वैसी ही बनी रही। नादिम के जीवन से संबंधित उस ऐतिहासिक घटना का बड़ा महत्व है, जिसमें वरिष्ठ युगनिर्माता कवि 'महजूर' ने नवोदित युवक 'नादिम' की कविता सुनकर कहा था–"वो पगड़ी बाँधे कश्मीरी पंडित मेरा जाँ नशीन (उत्तराधिकारी) होगा।" नादिम ने 'महजूर' की कविता के कथ्य तथा शैली का किस हद तक निर्वाह किया, यह अलग अध्ययन का विषय हो सकता है। महजूर ने जिस प्रकार कश्मीर के प्रकृति सौंदर्य और मामूली मनुष्यों के गैर मामूली सौंदर्य को उजागर किया उसी तरह, बल्कि एक नई दृष्टि से, उससे बढ़कर नादिम ने कश्मीर की सुदंरता के ढके चेहरे को खोल कर दमका दिया। उन्होंने 'आजाद' की परंपरा में कश्मीर के गरीब शोषित मनुष्य के मुंह में ज़बान रखी और उसके भोलेपन का, मासूमियत का सौंदर्य कविता का विषय बनाया। इस संदर्भ में 'महजूर' की वह अत्योक्ति ध्येय है, जिसमें उन्होंने खुद को पूर्ववर्ती गीतकार कवि रसूलमीर का अवतार होने की (बनने की आकाँक्षा) बात बताई थी। रसूलमीर में प्रेम के विरह और मिलन का उल्लास और उदासी गीतों में माधुर्य भर देती है। तत्कालीन सूफियाना वातावरण में उसके प्रेमगीत अपने समय की एक समानांतर मनः स्थिति का चित्रण भी करते हैं। कवि तथा आलोचक अमीन कामिल ने नादिम को 'महजूर' से बड़ा शायर माना है।

अन्य उपक्रम : सांस्कृतिक पहल

नादिम को अपने जीवन में लोकप्रियता और मान्यता दोनों मिलीं। इसके पीछे उन का युगनिर्माता व्यक्तित्व था और कश्मीर के स्वातंत्र्योत्तर दशकों में

सम्मानीय रहा। समकालीन मनीषा–परिषदों में, जो रचना से संबंधित थीं, भाषा के मानकीकरण से, या संस्कृति के लोकरंजक रूप के प्रस्तुतीकरण से, 'नादिम' का स्थान सुनिश्चित था। वे विधान परिषद के लिए चुने गए तो वहां अध्यापकों, शिक्षा तथा संस्कृति के पक्ष में खड़े हुए। सरकारी प्रतिनिधि मंडलों में शामिल होकर व्यापक वामपंथी जलसों या गोष्ठियों में भाग लेने गए तो वहां भी संस्कृति की वास्तविक स्थिति से प्रतिभागियों को अवगत कराया। कश्मीर के दो महत्वपूर्ण "प्रधान मंत्रियों" शेख अब्दुल्ला तथा बख्शी गुलाम मुहम्मद दोनों ने उन्हें मान दिया। 'सादिक' के तो वे पहले से ही निकट रहे थे। पर भाषा साहित्य संस्कृति और मनुष्य के प्रश्न पर उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। एक बार तो बख्शी के ही समक्ष, परोक्ष व्यंग्य के द्वारा उन पर भी फबती कसी, जब यह कहा कि "ख्वाजा गुलाम मुहम्मद (नाम की लंबाई तथा अवसरवादिता के बल पर) नवाब कहलाने लगे, जबकि 'मुम्मा' (गुलाम 'मुहम्मद' का विकृत नाम जो उस व्यक्ति को महत्वहीन और मामूली होने के कारण दिया जाता है) 'मुम्मा ही रहा। इस पहेली को भला कौन बूझ सकता है।" उन्हें बख़्शी शेख़ या सादिक साहब से कोई सुविधा या वरीयता विशेष भी तो नहीं मिली। भाषा और संस्कृति के मामले पर वे खुलकर विरोध करने से पीछे नहीं रहते थे। अपने मामले में बेशक आलसी तथा सुस्त थे। जम्मू कश्मीर कल्चरल एकेडेमी ने उनका गीत नाटक "वितस्ता" प्रकाशित किया जो उनकी पहली प्रकाशित पुस्तक थी और जिसपर फिर उन्हें एकेडेमी का पुरस्कार भी दिया गया, 1974 ई0 में जब वे अठावन वर्ष के थे और अपना अधिकाँश लेखन लिख चुके थे। कुछ मित्रों तथा प्रशंसकों के प्रयत्न से उनकी कविताओं का एकमात्र संकलन "शिहिल्य कुल" (शीतछांहा पेड़") 1985 में प्रकाशित हुआ। इसे 1986 का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। इन पुरस्कारों के अतिरिक्त उन्हें 1971 में सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार दिया गया, उनके मानवमैत्री लेखन के लिए तथा 1983 में एक गैर सरकारी सांस्कृतिक संस्था ने 'कल्हण सम्मान' से उन्हें नवाज़ा।

परपंरा–पुरुष

छिटपुट कविताओं के अतिरिक्त दीनानाथ 'नादिम' ने कई नाटक लिखे।

कुछेक रेडियो प्रसारण के लिए तथा कुछ मंचन के लिए। पर वे जिस कारण जाने जाते हैं, वे उनके संगीत रूपक तथा संगीत नाटक (ओपेरा) हैं। संगीत रूपकों में "वंद" (जाड़ा) की कुछ चर्चा हुई है। गीत नाटकों में "नेकी और बदी", भ्रमर और नारगिस" "शीतल छांहा पेड़", "मदन (प्रियतम) और सुंदरी", "वितस्ता" और "हीमाल तथा नागराय" प्रसिद्ध हैं। इनमें से अंतिम 1956 ई0 में बड़े पैमाने पर एक खेल के खुले मैदान में मंच खड़ा करके प्रस्तुत किया गया जिसे एक एक बैठक में दस बारह हज़ार लोग देखा करते थे। इसमें तथा "भ्रमर" और "मदन" में कश्मीर की लोक कथाएँ ली गई थीं और उनके द्वारा मानव प्रेम की ईर्ष्या तथा घृणा पर विजय दिखाई गई थी। "नेकी और बदी" पक्षी–चरित्रों द्वारा संसार में अच्छाई और सत्य की जीत का सिद्धांत प्रस्तुत करता है। "वितस्ता" सब से सुंदर काव्यात्मक तथा कलात्मक गीतनाटक है जिसमें नीलमतपुराण पर आधारित, कश्मीर की वितस्ता नदी (जिसे सती का अवतार माना जाता है) के जन्म, विवाह तथा प्रिय 'वुलर' झील में अंतिम विलय की प्रतीक कथा का रूपक उभारा गया है। इस नाटक के गीत अब तक जनमानस में गूंज रहे हैं और नादिम की सांस्कृतिक पक्ष धरता का जीता जागता सबूत हैं। यह नादिम के ओपेरा रचयिता व्यक्तित्व का प्रताप या चौंध थी कि उनकी जैसी और कोई ओपेरा–रचना नहीं हो सकी है। 1950–65 के बीच दो तीन ऐसे प्रयास हुए पर वे इतने साधारण हैं कि उल्लेखनीय नहीं है। इसी प्रकार 'नादिम' के शुरू किए हुए 'सॉनेट' की परंपरा कश्मीरी कविता में नहीं चल सकी। पहली कश्मीरी कहानी उनके समकालीन सोमनाथ जुत्शी ने लिखी, और उन्हीं दिनों नादिम की पहली कहानी 'जवाबी कार्ड' के साथ तत्कालीन पत्रिका 'क्वंग पोश' के 1950 ई0 के अप्रैल अंक में प्रकाशित हुई। सॉनेट उन्होंने थोड़े से ही लिखे, कहानियाँ केवल तीन प्रकाशित हुई, पर उनके इन प्रयोगों ने कश्मीरी रचनाकारों में प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति पैदा की। यह उनके युगांतरकारी व्यक्तित्व का द्योतक है। उनके कनिष्ठ समकालीन कवि आलोचक स्व0 मोती लाल 'साकी' का कहना था कि नादिम का अप्रकाशित साहित्य उन के प्रकाशित साहित्य से बहुत ज़्यादा है। दुर्भाग्य से न 'साकी' ही उसे प्रकाश में लाने तक जिए और न ही नादिम के उत्तरवंशी ऐसा प्रयास कर पाए हैं। यह दुर्भाग्य की बात है।

कदावर व्यक्ति–कवि

नादिम की सारी कविताएँ प्रकाशित नहीं हुई हैं। जो "शिहिल्य कुल" में संकलित हैं, उन्हें उनके संपूर्णत्व का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। पर जब तक वैसा होता है, उनका कवि व्यक्तित्व अपनी शीतलछाँही महानता में कश्मीरी साहित्य के इतिहास में अपनी विशिष्टता बनाए रखेगा। इस इतिहास के स्वातंत्र्योत्तर पल्लवन में दीनानाथ नादिम का ऊँचा कदावर शरीर चौड़ा हंसता माथा और भारी लंबे क़दम विकास का लैंडमार्क बना रहेगा। नादिम के काव्य के विभिन्न पहलुओं पर बहुत कुछ लिखने चिंतन करने की जरूरत है। अभी उनके समकालीन लेखक मित्र उन्हें वस्तुगत दृष्टि से देख नहीं पा रहे हैं। कुछ तो सकुंचित धार्मिक, अर्ध–सामाजिक या अर्धकलापरक दृष्टि से उनका समुचित मूल्यांकन कर नहीं रहे हैं। नई दृष्टि के बेलाग होकर देखने वाले नवालोचक शायद उन्हें और बेहतर देख पाएँगे। उस समय शायद प्रस्तुत संकलन और अध्ययन कोई सहायता प्रदान कर सके।

–रतन लाल शान्त

पूर्वाभास–2

नादिम : अनुवाद मे

शब्द का ठीक पर्याय दे पाना या अनुवाद को मूल वाक्य के मुहावरे के अनुकूल ढाल पाना ,प्रायः अनुवाद की समर्थता की माप इन ही दो मापदंडों से की जाती है। पर अनुवाद इतना मात्र नहीं। कारण यह है कि कोई भी भाषा केवल शब्द तथा वाक्य नहीं होती। भाषा अभिव्यक्ति की पूरी संस्कृति साथ ले चलती है। इस में प्रयोग करने वाले के इरादे का स्थान सर्वोपरि होता है। वह क्या चाहता है, भाव, विचार, भावना या दर्शन को किस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है, यह अहम होता है। उसने शब्दों का खास चुनाव किया होता है जिससे उसका मूड व्यक्त हो सके। उसे शब्दों के कई पर्यायवाची उपलब्ध होते हैं, उनमें से वह कोई एक ही क्यों चुनता है? उदाहरणतः कश्मीरी भाषा में दो शब्द हैं–'पोश' और 'गुल' 'गुल' गर्वभरा आत्मसम्मान भरा, महफिली रौनक वाला फूल होता है। 'पोश' अर्थात फूल, जो नर्म है, ना–जुक है, सुंदर है, घरेलू सा है। 'पोश' या 'पोशिमाल' या 'पोशितुल' या 'पोशिवॅथुर' (पंखुड़ी) सुंदर नाजुक हसीना या महबूबा के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। हिंदी में फूल के कई पर्याय उपलब्ध है जिनमें से पुष्प , कुसुम, सुमन अधिकतर प्रयोग में आते हैं। 'पुष्प' आम शब्द है जो किसी भी फूल के नाम के साथ प्रयोग में आता है, जैसे कमलपुष्प, कुमुद पुष्प या कोई और पुष्प। 'कुसुम' और 'सुमन' फूल की नाजुकी या सुंदरता बतलाने समय इस्तेमाल होता है। सुमन 'बच्चे' के लिए भी प्रयुक्त होता है। फिर यह भी देखते हैं कि शब्द चयनकर्ता कवि की मुद्रा कैसी है? मध्ययुगीन (भक्ति या रीतिवादी) छायावादी या आधुनिक।

इसके अनुसार हम कश्मीरी के 'फूल' के लिए हिंदी का सर्वोपयुक्त शब्द चुनकर लेंगे। जिस प्रकार मूल रचियता को कई उपलब्ध पर्यायों में से एक चुन लेने का अधिकार और विवशता दोनों होते हैं, ताकि कविता की संपूर्ण मनस्थिति और मुद्रा बन जाए, उसी प्रकार अनुवादक को कई पर्यायों में से एक चुन लेना होता है।

नादिम आधुनिक कवि हैं, पर काल मात्र के कारण नहीं। वे आधुनिक हैं, क्योंकि कश्मीरी कविता में आए स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तनों के शलाका पुरुष हैं। उस समय वे प्रगति वादी शब्द तथा अभिव्यक्ति के पोषक थे। पर बाद में उनमें समकालीन मुहावरा तथा व्यंजना भी आई। इसलिए उनका अनुवाद करते हुए स्पष्ट समझना चाहिए कि हिंदी की प्रगतिवादी कविता तथा समकालीन कविता की जैसी भाषा उनमें यथास्थान प्रयोग में लाई जा सकती है।

पर समस्या यहीं समाप्त नहीं हो जाती।

नुंदऋषि तथा रसूलमीर जैसे क्लासिकल कवियों का अनुवाद करते समय मैंने अनुभव किया था कि भाषा में तत्सम शब्दावली का प्रयोग मजबूरी हो जाती है। कारण यह कि मूल फारसी या फारसी–उद्भूत शब्द की गुरुता बनाए रखना जरूरी होता है। प्राचीन तथा अब अप्रयुक्त शब्दावली का रूप यदि संस्कृत से मिलता जुलता है तो संस्कृत का तत्सम शब्द देने में सुविधा होती है। ऐसा शब्द मूल की क्लासीकियत को भी संप्रेषित करता है। पर रसूलमीर की फारसी बहुलता की स्थिति दूसरी है। यह गुण उन्नीसवीं सदी के अधिकाँश कवियों (कुछ भक्त कवियों में भी) रहा और बीसवीं सदी में सूफीधारा के प्रमुख कवियों में (तथा 'आजाद' और 'महजूर' में थोड़ा कमतर) बना रहा। नादिम की भाषा में पहलीबार लगता है कि कवि फारसी के ग़ालिब होने से छुटकारा पाना चाहता है। वह 'दिनकर' की तरह 'वनफूलों की ओर' देखने की प्रवृत्ति पैदा करता है, सुमित्रानंदन पंत की तरह 'देखो भू को, जीव प्रसू को' कहकर परिष्कृत भाषा में ग्रामीण स्थिति में जाने की कृत्रिम कोशिश नहीं करता।

'वनफूलों' के प्रसंग में एक समस्या यह उभरती है कि कश्मीरी के फूल–फल–सब्ज़ी–घास–वनस्पति के ठीक हिंदी पर्याय नहीं मिलते। वस्तुतः कश्मीरी–हिंदी कोश है ही नहीं अतः अनुवाद दुष्कर बन जाता है। फिर नादिम ने कश्मीरी स्थानिकता को संपूर्ण अवयव के साथ पुनर्जीवित किया। इसलिए नहीं कि वे कश्मीरी में इस न्यूनता को पूरा करना चाहते थे, बल्कि इसलिए कि वे कश्मीरी दलित वर्ग, किसान और मजूदर, अबला, विधवा और प्रतीक्षारत नई

नवेली के माध्यम से उपेक्षित कश्मीरी की ओर हमारा ध्यान खींचना चाहते थे। यह एक कारण है नादिम की भाषा की ताज़गी का। पर यह ताज़गी गेयता की शर्त पर या प्रवहमान छंदों में बंधी आती है। इसलिए अनुवाद में गेयता तथा छंदोबद्धता की इष्टता का प्रश्न उठता है। स्वच्छंद कविता इस सिलसिले में उतनी समस्या नहीं पैदा करती।

यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं कि गेय मूलकविता का गेय अनुवाद हो या मूल छंदोबद्धता, अनुवाद में भी छंद में बंधी हो। पर जैसे मैं ने ऊपर कहा, मूलकविता का 'मूड़' अनुवाद में भी बना रहे यह ज़रूरी नहीं तो इष्ट ज़रूर होता है। प्रगति वादी कविता बहुत हद तक प्रवाह और उष्णता की कविता थी। इन गुणों को बनाए रखने के लिए कई बार तत्सम शब्द का इस्तेमाल ज़्यादा प्रभावशाली होता है। यानी कि आधुनिक संवेदना की कविता होने के बावजूद तत्सम का कद्रे पूर्व–आधुनिक (या कभी कभी छायावादी) शब्द का प्रयोग भी करना ही पड़ता है। गेयता के लिए या तुकसमता के लिए तत्सम शब्दों की संपदा ज़्यादा उपलब्ध है, हिंदी में। फिर नादिम उपमाओं रूपकों की निष्पत्ति के लिए अनुरणनात्मक शब्द रंज़न से काम लेते हैं, और अनुरणनात्मक शब्द तत्सम ही मिलते हैं।

नादिम की मुक्त छंद की कविताओं या लघु कविताओं में यह समस्या नहीं इसलिए वहां समकालीन भाषा के प्रयोग की छूट मिलती है। इसीप्रकार गज़ल में कहीं कहीं उर्दू की शब्दावली को मूलवत रखा जा सकता है। ऐसा ही प्रयास प्रस्तुत अनुवाद में किया गया है। पर गज़ल का अनुवाद गज़ल में ही करना बड़ा दुष्कर है। जोखिम उठाने के बाद भी गज़ल पूरी तरह से अनूदित नहीं हो सकती। कहीं पर उसे गद्य की पंक्तियों में रूपांतरित करना पड़ा, तो कहीं दोहे में गज़ल के शेर की तीव्रता और संक्षिप्तता बेहतर संप्रेषित हो सकी। नादिम आरंभ में अतिशयोक्ति से बहुत काम लेते हैं पर धीरे धीरे उनका विकास होने के साथ साथ न्यूनोक्ति आती है। वास्तव में न्यूनोक्ति उनकी कविता का क्या, मात्र अभिव्यक्ति का एक गुण है, जो सर्वमान्य है। नादिम के लिए हिंदी का न्यूनोक्ति – शब्द भी सटीक होना चाहिए।

फिर कश्मीरी भाषांतरण में कुछ आधारभूत कठिनाइयाँ है, वचन तथा लिंग की। उदाहरणतः कश्मीरी में 'चांद' स्त्रीलिंग है, अनुवाद में इसे 'चांदनी' नहीं कहा जा सकता क्योंकि चाँदनी चांद का प्रकाश होती है, आकाश पर सोलह कलाओं वाला चांद नहीं। इसी तरह की एक और कठिनाई तब पैदा होती है, जब एक

ही पंक्ति में हिंदी के पत्ता या पत्र के तीन तीन पर्याय 'पॅत़ुर' (कश्मीरी) वॅथ्र (कश्मीरी) बॅरग (फारसी) का प्रयोग किया गया हो। अलग अलग से इस तरह की कठिनाइयों पर कैसे काबू पाया गया है– यह पाठक स्वयं जान सकते हैं।

कविताओं का क्रम कालानुसार रखा गया है। जिस कविता का रचनाकाल नहीं दिया गया था, उसे वहीं रखा गया जहां 'शिहिल्य कुल' संग्रह में रखा गया था। तकरीबन सभी कविताएँ इसी संग्रह से ली गई हैं। अतिरिक्त कविताएँ अंत में दी गई हैं। कुछ गज़लों के शीर्षक दिए गए है क्योंकि अनुवाद में भी उनके गज़ल होने के बारे में विश्वास से नहीं कहा जा सकता। इस संग्रह को प्रतिनिधि संकलन बनाने के लिए 'नादिम' की विभिन्न विषयों पर लिखी कविताएँ ले कर अनूदित की गई हैं। सर्वोत्तम से पहले सर्वप्रतिनिधि – यह अनुवादक का प्रयत्न रहा है।

कश्मीरी लिपि चिह्न

(मूल कश्मीरी शीर्षकों,नामों आदि में प्रयुक्त)

ध्वनि उदाहरण

क) स्वर (केवल क़श्मीरी के स्वर)

अॅ	लॅर(मकान) अॅछ (आंख) मॅछ (मक्खी)
ऑ	लॉर (खीरा) सॉर (सैर) चॉनिस (तेरे)
अ़	त़ (और) ब़ (मैं) नत़ (नहीं तो)
ए'	मे' (मुझे) बे'ह (बैठो) बे'यि (और,अन्य)
ओ'	नो'ट (घड़ा) छो'ल (धोया)

ख) व्यंजन (हिंदी व्यंजनों के अतिरिक्त)

च़	चो'ट (रोटी)
छ़	छ़ावुल (बकरा)
ज़	ज़ॉव्युल (बारीक) ज़ितनि (चिंगारियां)

शबाब का नारा [1]

उठना है मुझको
उठना है मुझको, पहन युद्ध का कवच, बाँध साज़ो सामान
परवाना बनकर अपने घर पर होना है बलिदान
दीवाना बनना है मुझको
देकर अपना खून वतन को करना है शोभायम
ताज़ा है मेरा जोबन
ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन!

लड़ना है मुझको
लड़ना है मुझको महाज़ पर युद्धों की सरहद पर
खाई खंदक राहों में पगडंडी पर, पद पद पर
और चट्टानी राहों में
कौमी सैनिक हूँ करना है मुझे देश का प्रतिरक्षण
ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन!

बरपा करना है मुझको
बरपा करना है मुझको तूफान शत्रु की लश्कर में
गर्जन करना है मुझको बादल अंधड़ प्रलयंकर में
राहों में बाज़ारों में
देकर नारे लाल, जगत में पैदा करना है कंपन

1.(मूल कश्मीरीः नारय शबाब)

ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन
चलना है मुझको
चलना है मुझको अब तो बस अभिमत के अभिमत पर
नज़रें मेरी लगी हुई हैं नेताओं के ही मत पर
एक एक कश्मीरी पर
जग को करना एक, स्थापित करके सबमें मेल –मिलन

ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन
देनी है मुझको
देनी है मुझको नई दिशा समवायों और समाजों को
सिद्धांतों और विचारों को, रस्मों और रिवाजों को
बड़े बड़े साम्राज्यों को
दुई मिटाके है मुझको समता का करना आयोजन
ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन!

करना है मुझको
करना है मुझको निर्मित अब नूतन जग, एक नया जहान
नया आदमी ,नई पतझड़ नव आषाढ़ नया श्रावण
ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन!

मचाना है मुझको
मचाना है मुझको भूकंप सड़क, बाजार, सभाओं में,
और चमकना है मुझको हल ले, आकाश बिजलियों में
नभ पर और दिलों में भी
फर्क हटाना, फर्क मिटाना, धनी कोई हो या निर्धन
ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन!

लिखनी है मुझको
लिखनी है मुझको किस्मत अब नई दरिद्रों कँगलों की
पीड़ित गूंगों और अनाथों, बेबस ।णी दुखियों की
विधवाओं असहायों की
इनके सोए भाग जगाऊँगा तो होगा नव जागरण
ताज़ा है मेरा जोबन, मेरा जोबन!

कश्मीर का दावा[1]

हेलमेल समवर्तन से दुनिया को समान बनाना है
हिंदु और मुसलमान को फिर से इनसान बनाना है।।

हिंदू सिख से मिल लेगा, और हिंदू से मुसलमान
कौन कह रहा भिन्न भिन्न हैं, सभी एक मांकी संतान
बैर द्वेष के कांटे चुनने हैं, उद्यान बनाना है।
हिंदू और मुसलमान को फिर से इनसान बनाना है।।

मरघट आज बन गए दोनों हिंदुस्तान और पाकिस्तान
तनपर रक्तरँगे कपड़े पहने हैं हिंदू मुसलमान
प्रेमसुरा को बाज़ारों में सस्ता सुलभ बनाना है।
हिंदू और मुसलमान को फिर से इनसान बनाना है।।

क्योंकर मजूर के अर्जित को धनवान छीनकर ले जाए?
मधुमक्खी फूलों को घेरे, चूस के परिमल ले जाए
जनता का जनतंत्र हमें, अब आलीशान बनाना है।
हिंदू और मुसलमान को फिर से इनसान बनाना है।।

सिरों पे कैसे ताज सहूं, ऐसा अभिमान अमीरों का,?
धनी लोग क्यों प्यासे हों, पीते हैं खून गरीबों का
भाग्य मुझे इनसानों का अच्छा व महान बनाना है
हिंदू और मुसलमान को फिर से इनसान बनाना है।

जहां दिलों का शौक एक हो, सब की एक प्रवृत्ति रहे
जोश एक हो होश एक हो, सबकी ममता–वृत्ति रहे
उसी जगह पर मुझे प्यार का देवस्थान बनाना है
हिंदू और मुसलमान को फिर से इनसान बनाना है।

(1947)

1.(मू0 क0–कँशीरि हुंद दावा)

इरादा[1]

गरम गरम है लाल है, गरम है, लाल लाल है
गरम गरम है लाल लाल मेरा खून, खून है
जवान हूं तूफान सा मेरा जुनूं , जुनून है।।

कश्मीर पर बलिदान हूँ, मैं जान दूं, है शौक मेरा
भँवर भला, करेगा क्या भँवर मेरा, मैं हूं हवा
छिपा पड़ा रहूँ सरोवरों में किसी लहर सा
बढूंगा बाढ़ की तरह, व दुश्मनों को दूँ ढहा
इसीलिए तो गरम है और लाल मेरा खून है।।

खुश हूँ, वतन आज़ाद है आज़ाद है करना मुझे
कोहरा हटा, इस चमन को आबाद है करना मुझे
रोना सिसकना सब पुराना याद है सब याद है
जोश है नया मेरा संकल्प, यह मुराद है।
इसीलिए तो गरम है और लाल मेरा खून है।।

आग से लपटें उठीं, है बिजलियों का इशारा
बेचैन ज़लज़लों ने भीतरी सब राज़ सुनाया
शहीद की समाधि से शिराओं में उबाल है
बुलबुलों ने सांस को उफान दिया
मुझे बोल सिखाया
इसीलिए तो गरम है और लाल मेरा खून है।।

1.(मू0 क0–यराद्)

जल रहे हैं वन मेरे तो चैन मुझे आएगा?
फूल रो रहे कलप रहे हैं, रहा जाएगा?
कौंसिलों और फैसलों हैं का इंतज़ार हो पाएगा,
दहन सहूं, दहन मेरा बिगाड़ कुछ न पाएगा
इसीलिए तो गरम है और लाल मेरा खून है।

संकल्प है कि जग को जवानी का ज्वार दिखाऊँ
बाग पर वसंत वायु सा जिगर को वार दूँ
खून से मैं ओस को रँगूँ, तो मोल बढ़ाऊँ
आग और भूँचाल बनूँ शत्रु को पछाड़ दूँ।
इसीलिए तौ गरम है और लाल मेरा खून है।

मुझे उम्मीद है कल की[1]

(1)

कल की है उम्मीद मुझे
कल तो यह दुनिया लहकेगी

कल के दिन रोशनी बढ़ेगी, गुलगुलज़ार उजाले होंगे
हुमस उठेगी यह धरती और हरियाली भी फूटेगी
'उस' के सीने में भी तो फुहार प्यार की छूटेगी

कल तो यह दुनिया लहकेगी
काजल बिन मेरी आंखे, हो जाएँगी कजरारी
दूध आएगा छाती में, चुचियाँ होंगी रतनारी
दस बरस बाद दशहरा पाहुना मेरे घर पर आएगा
कल तो यह दुनिया लहकेगी

'हाय!' जाएगी, 'हुँआ' की भनक कानों में आएगी
चुहकेगा वह मेरी छतियाँ बड़े प्यार से
कुछ और मेरे जच्चाघर की दीवारें दमक उठेंगी

1.(मूo कo मे छम आश पगह्च)

कल तो यह दुनिया लहकेगी
सुनने को आतुर, मेरे द्वार पर कान धरेगा 'वो'
समाचार सुन, सिर ऊंचा कर दबे पाँव फिर लौटेगा
'लड़के के बप्पा' के लिए बधाई हौले गाँऊगी
कल तो यह दुनिया लहकेगी

सखियाँ आकर मुझे बधाई देंगी बारंबर
बतला दूंगी बेटे की मां हूँ चिनार छतनार
बच्चा यों ही नहीं दिखाऊँ, गोद–लिवाई लूंगी
कल तो यह दुनिया लहकेगी

सुना है कि कल जंग छिड़ेगी
काश कि कल कोई जंग न हो
कल तो यह दुनिया लहकेगी
काश कि कल कोई जंग न हो।

(2)

कल की है उम्मीद मुझे
कल 'वो' आएगा, वादा है।
दिन ढले करूंगी उसका पेड़ों की ओट में इंतज़ार
मैं उसकी हीमाल[1], अपने प्यार का करूँ इंतज़ार
भले देर से आए ग़म क्या, हार के भी करूँ इंतज़ार
कल 'वो' आएगा, वादा है–।
मेरे प्यार का माता चुपके से झूमता आएगा

1.हीमाल– लोक कहानी की सुंदर नायिका । शब्दार्थ – 'ही' या 'हिय' फूलों की माला

मैं उसकी माला के फूल चुनूँ क्योकि वो आएगा
बात करेगा मैं रूठूँ तो संकेतों में बोलेगा
कल 'वो' आएगा, वादा है।
बैठी रहूँ झुकाए सिर, कितनी भी ठोड़ी पकड़े
नज़र उठाकर देखूँ, मेरे दामन पर झुकजाएँ तो
मुमकिन नहीं थमें आँसू, जब मुझको गले लगाए वो
कल 'वो' आएगा, वादा है।
सिर उसकी गोदी में रखकर दिल का दर्द सुनाऊँगी
दाग़ रुपहरी छाती के, उसको मैं भेंट चढ़ाऊँगी
काहे मुझे प्यार पर दांव लगाया, उससे पूछूँगी
कल वो आएगा, वादा है।
बोलगा दिन आने वाले हैं यौवन हुलसाएँगे
खुलकर फिर हम प्यार करेंगे और सबको जतलाएँगे
पूर्व–पुराना छोड़ चलें हम नव–नवीन अपनाएँगे
कल वो आएगा, वादा है।
सुना है कि कल जंग छिड़ेगी
काश कि कल कोइ जंग न हो
कल तो यह दुनिया लहकेगी
काश कि कल कोई जंग न हो।

(3)

कल की है उम्मीद मुझे
बच्चों का 'बप्पा' आएगा

जब उसकी आवाज़ सुनूँगी निकलूँगी अगवानी में
घूमूँ उसके गिर्द घेरकर उसको निज गलबाहीं में
ताज़ा कटी घास पर बैठक उसके लिए सजानी है
बच्चों का बापू आएगा।
देखती रहूँगी गठरी, उसके कंधे से उतार कर
धो लूँ उसके पाँव कि आया होगा थका, हार कर
उसे सुलाऊँगी थपकी दे धीरे धीरे पाँव दबाकर
बच्चों का बापू आएगा।
उसकी गठरी में होंगे गुल नए और गुलज़ार नए
मेरे लिए छींट 'जानी'[1] की बाली और तूमार[2] नए
खुतने[3] की खातिर, हबीब के, रुपयों के अंबार नए
बच्चों का बप्पा आएगा।
आने वाली ईद के लिए कपड़े नए सिलाएंगे
(शुक्राने के) दो भेडू हम कुर्बानी में चढ़ाएंगे
'हब्बा' की चटसार के बच्चों में शीरीनी[4] बाँटेंगे
बच्चों का बप्पा आएगा।
कहते हैं कल जंग छिड़ेगी
काश कि कल कोई जंग न हो
बच्चों का बप्पा आएगा
काश कि कल कोई जंग न हो।

---

1. बेटी का नाम है
2. एक आभूषण है
3. मुसलमान बच्चो का 'खुतना' –एक धार्मिक रस्म
4. एक मिठाई, मिश्री

मैं आज नहीं गाऊँगा[1]

मैं आज नहीं गाऊँगा
फूलों का, बुलबुलों 'संबुलों'
मदमाती वल्लरियों का
खुमार भरा
मोहन सोहन
मीठा मीठा और अधनींदा,
ऐसा कोई गीत,
ऐसा कोई गीत नहीं गाऊँगा मैं,
क्योंकि आज, क्योंकि आज
गर्द और गुब्बार जंग का, आज उड़ रहा
वल्लरियों का रंग आज है फक पड़ रहा
भभका आज धुंए का है
स्वर बुलबुल का घोट रहा
संबुल के पांवों में बजती इधर बेड़ियां उधर बेड़ियाँ
बिजली की आंखों पर, जाला सा छाया है
पर्वत पहाड़ियाँ जैसे सब हैं ढकी हुई

1.(मू0 क0–ब ग्यव न अज़)

काले काले बादल ने शिखरों पर घेरा डाल दिया है
गाऊँगा मैं नहीं आज।
कमर कसे तैयार है, वह जंग बाज़ है, जाल साज़ है
छीने कश्मीर मेरा, वो तो बैठा है इसी ताक में
मैं आज नहीं गाऊँगा—
शालामार, निशात, या कि वह आबशार का
गुले लाला के बागों का
कोमल कोमल
चिकना चिकना
हरी हरी सी शबनम का भी गीत कोई
मैं नहीं गाऊँगा ऐसा कोई गीत आज
क्योंकि आज, क्योंकि आज
कड़ी धूप बेशरम हर जगह ज्यों कि ताक में बैठी है
कर रही जतन मेरे उपवन का करे हनन
हैं इसीलिए फूलों की सांसें रुकी रुकी
है डोल रहा गुले लाला अपना दाग़ लिए
नदियों की कलकल पर पहरा ज्यों लगा हुआ
कोयल का खत्म उछाह हुआ
सहमी ज्यों बैठी वन–सारिका

मैं आज नहीं गाऊँगा
हैं आज क्योंकि जंगबाज़, जालसाज़ बैठे तैयार

कश्मीर मेरा लेने को लपक छीन मुझसे
नहीं गाऊँगा आज
नवबहार का, बालसखा से आशा का, आकाँक्षा का
रंगबिरंगा लाल और चटकीला
नीला पीला गरम दमकता
गीत कोई
मैं ऐसा कोई गीत नहीं गाऊँगा
आज, क्योंकि आज
है वंसत के पीछे आँधी पतझड़ की, आषाढ़ की
आवारा फिरतीं नई नई अफवाहें दावानल की
फैलीं आज वनों के अंदर
कोशिश है आदमी कर रहा, मानव के शिकार की
उलझ गए, उखड़ पुखड़ के ढेर हो गए
नरगिस के फूलों के केश
थक के चूर पड़ी है हवा
विकल हुई है जुही विवश और कटी छुटी
मैं नहीं गाऊँगा आज
नहीं गाऊँगा आज कोई खेतों खलिहानों और क्यारियों के अंदर
बैल हांकते किसान का
भरा पसीने से कोई भी गीत निराई का
आज नहीं गाऊँगा, नहीं आज गाऊँगा
आज क्योंकि आज

नई निराई के मौसम में
हवा चली ऐसी कि खेत का
जीवट छीन लिया है इसने
खलिहानों में टिड्डी दल के आने का आंतक बसा
डर से सूख, पसीना माथे का गायब है
चट्टानों के गिर्द भँवर मंडराते हैं
और घास के तिनके हैं कृशकाय
जड़ों से खून चू रहा जैसे।

मैं आज नहीं गाऊँगा
है आज क्योंकि सब जंगबाज़ सब जालसाज़
मेरे कश्मीर को लपक लूटने को तैयार
मैं आज नहीं गाऊँगा, नहीं गाऊँगा
तब तक, जब तक
पर्वत–पहार
फूल–सुमन
नए पुराने, काले उजले
कुमरी[1] कोयल
चहचह चूं चूं
शरद और वंसत
वन उपवन, नदिया पानी, जुही गुलाब
शालामार गुलेलाला,आबशार, नवबहार

---

1. पक्षी

'ज़ोजी पर्वत', 'बुर्जा पर्वत', 'नंगा पर्बत'[2]

शेषनाग, वावजन[3]

निर्भय हो, बेख़ौफ बिना पहरा मैं फिर देख सकूं

और धुंधलके में साये के

जल्दी

जल्दी बहुत जल्दी

मेरे सभी इरादे फिर से हँसें, रचें, बसें

मेरी मुराद हो सफल

अपना प्यारा सुंदर उपवन

यह मेरा अपना, अपना मेरा यह वतन मैं फिर देखूं

आबाद हो, आज़ाद और मनहर बहार सा

बचपन जैसा

तभी गाऊँगा, मैं तभी गाऊँगा,

वह नींद भरा, खुमार भरा कोई राग नहीं गाऊँगा

इसलिए आज मैं निकल पड़ूं, मैं चल दूँगा,

और सुधारूँगा राहें

मेड़ों और किनारों को कर लूँगा हमवार

चल पड़ूं कलम तेज़ लेकर और तेज़ तलवार

दुश्मनों और बटमारों पर

कलम हथौड़ा और दरांती

---

2. कश्मीर के कुछ पर्वत *3. अमरनाथ मार्ग की झील, पहाड़*

संकल्प इरादा दृढ़ लेकर
प्यारे बाग़ के पोर पोर से
आज पसीना धो लूँगा
यह प्रिय उपवन
बाल सखा, मेरा उपवन
तेरा मेरा
खोह और गह्वर गढ्ढे, भर दूँगा मैं नई जोत से।

मैं आज नहीं गाऊँगा,
मैं आज चल दूँगा
कलम हथौड़ा और लेकर तलवार
एक इरादा, एक और इरादा लेकर।

(1950)

'कविर्मनीषी' का अपकार मौत क्या करे?[1]

खबर आई शहर गांव फैली चारों ओर,
बाग़ जंगल पूछने सब लगे चारों ओर
पूछने सब लगे देखा तो नहीं 'महजूर' को?
किसी ने तो नहीं देखा, दुलारे महजूर को?
पूछने बुलबुल लगी निज मीत से, गुलज़ार से
पूछती 'रूमिश' नदी[2] 'रँबिआर'[3] से, निज यार से
यार से पूछे –मेरे बाबुल, मेरे महजूर को
आपने तो नहीं देखा, हमारे महजूर को ?
अनमना जोबन चला ज्यों 'हियलता' की ओर
सिकुड़, सावन ख़बर लाया वंसत ऋतु की ओर
बोलने वाले कुरर को हतप्रभ महजूर को
आपने तो नहीं देखा दुलारे महजूर को?
ओस पूछे लाला–गुल से उदयशिखरों की ख़बर
मचा बिजली शोर, पूछे उदयशिखरों की ख़बर
शोर मचा पर्वतों पर, विहँसते महजूर को?[1]

---

1 (मू0 क0–ग्वनमातस मोतुक शर करि क्याह?) 'महजूर' की मृत्यु पर लिखी कविता।
2. एक छोटी नदी 3. एक गर्जता नद

कुँई कुम्हला गई और, चली सियराई हुई
पूछती कोमल कली दुखार्त अँसुआई हुई
पूछती है–विनोदी और हास्यप्रिय महजूर को
आपने तो नहीं देखा दुलारे महजूर को?
विकल है नरगिस, भ्रमर को पीर से पुकारती
गरज प्याले की मदिर साकी पे नज़र डालती
पुकारते हैं फूल, खिलते मनहरण महजूर को
अपने तो नहीं देखा हमारे महजूर को?
प्यार को ढूंढ़े तमन्ना आज खोजती जाए
प्यार भागे रूप के पीछे, नहीं, खिल आए
बालपन पूछे मेरे जोबन मेरे महजूर को
आपने तो नहीं देखा दुलारे महजूर को?
संतूर के मन में मची कँपकँपी तार तार में
याद सांरगी करे बचपन, कहा सितार ने
सितार ने पूछा कि मंगल गीत[1], शुभ महजूर को
आपने तो नहीं देखा हमारे महजूर को?
खबर फैली शहर में और गांव में
ज़ंगल उपवन ठांव ठांव में
पक्षी बोला पवन से, पवन बोला सुमन से,
सुमन प्याले से, प्याला साकी से कह गया

1. मंगल गीत जो विवाह पर गाया जाता है। महजूर के गीत विवाह पर गाए जाते थे, संगीत में औ नृत्य के साथ।

साक़ी मैखाने में बोल गया
शोर से चीत्कार उठा मैखाना
प्याले से प्याला यों टकराया
गुहार लगी– कहां रे महजूर गया ?– महजूर गया!!
लौट के गुहार आई– यहीं तो है, कहीं नहीं दूर गया!!

गुले लाला की छाया में डोल रहा यहीं है रे, नहीं गया[1]
जोबन का मीत है वो बे फिक्रा यहीं है रे, नहीं गया
सरसों के खेतों में, कमलों में यहीं है रे, नहीं गया
नवजाये शिशुओं को झुला रहा यहीं है रे, नहीं गया
खोज रहा हल को, हलधर को यहीं है रे, नहीं गया
श्रमिकों की, दुखितों की संगत में यहीं है रे, नहीं गया
नई आस को है रे मना रहा, नई रोशनी को है रे सजा रहा

ज़िंदा है 'महजूर' जिंदगी भला कभी मरती है?
कविर्मनीषी का अपकार मौत भला करती है?[2]

---

1. *यह गीत अशं रो'व लोकनृत्य की धुन पर रचा गया है।*
2. *फारसी की 'अक्षर' मूल्यपद्धति' से इस मूल कश्मीरी पंक्ति का हिसाब लगाके अर्थ बैठता है –9 अप्रैल 1952, जो मजहूर की निधन तिथि है।*

सॉनेट[1]

याद नहीं हैं, प्रिय, क्या तुमको वे बीत दिन?
खेला करता लुक छिप मेरा तेरा जोबन
दूर दूर से इक दूजे के करते दर्शन
कल की हम कल्पना संजोते, यों कटते दिन

खाली झोली, हार ढल गया पूस था कठिन
हुई निपत्ती नाज़ुक शाखा वसंती सघन
मगर हमारे दीवट, प्यार का दीया रोशन
रोशनी जगाए, दूर करे अँधियारा पल छिन

इसी रोशनी ने तो मेरी आस जिलाई।
और हमारे अरमाँ का काफ़िला चला।।
अब बहार है, अरमानों की बौर खिली।।।

'गुले लाला' खिल उठे तेरी रीति अपनाई।
आह तेरी मेरे वसंत की मदिर हवा।।
नए समय पर तेरी छवि झिलमिली, खिली।।।

(1954)

1.(मू0 क0– सान्यट)
तुक योजनाः (मूल के अनुसार ही रखी गई है।)
क ख ख क, क ख ख क, ग घ ङ, ग घ ङ

अमन की अपील पर दस्तखत[1]

मैंने उस से कहा कागज़ पर दस्तखत कर लो
मगर उसकी आंखें देखलीं, जाने हुआ क्या फिर मुझे
नयन उसके कि जैसे 'हिय, के खिले पत्ते
जैसे रोशनी से हीन दो भौंरों वाली नरगिसें,[2]
ज्यों (दो) आकाश, खोजते फिर रहे कुछ समंदर में
प्याले दूध के यों ही अकारण हों उफ़न आए
जैसे श्वेत (बेरंग) कमल के हो पूत जन्मा
जैसे कट गईं हों ज्योति से (हटात्) दो फांकें
जैसे उषा के बालपन की दो खिलवाड़ें हों
जैसे जन्म लें बादल पहाड़ी सोतों में
देखें राह, जैसे
तारे नयन के टटकी ओस में रोशनी खोजें,
आकाश की आर्द्रता
खोजने चली हो राशि (सुख की) किरणों की तरह

---

1. (मू0 क0– अमनुचि अपीलि प्यठ दसखत)
2. भौंरा ग्रीष्म में आकर अंधे प्रेमी की तरह नरगिस को ढूंढता फिरता है, जब कि नरगिस का मौसम खत्म हो चुका होता है।

कहा मैं ने उससे दस्तखत कर लो कागज़ पर
सुना, अधरों पर मासूम मुस्कान फैली
उसकी पलकों में जैसे बाढ़ आई
कलम थामी, रोके अश्रु भी उसने बहुत
दो बूंदें थी मुँह चिढ़ी, पलकों ''' उभरने लगीं
ज्यों दो जुड़वाँ मोती जन्में हों
जैसे कलियाँ उपवन से ज्योति के दरस पाने निकली हों
और उसकी पलकों से, झूला झूलने लगी

पकड़ कर हाथ मेरा, हाथ में, कहने लगी धीरे
सिर्फ सत्रह बरस की थी कि खो दी ज्योति आंखों की
लगा था मेरी छाती से लगा मेरा टुकड़ा जिगर का खो गया
बमों ने और गोलों ने मेरे जोबन को बिल्कुल राख कर डाला
बहुत रोई हूँ बहुत कलपी पर अब हरगिज़ न रोऊँगी
झटकीं तभी पलकें अश्रु की, बूंदे गिरी दोनों
गिरीं कागज़ पे जैसे लड़ी (टूटी) मोतियों की
सूखीं अश्रु की बूंदे जैसे रजत पट्टे पर सुनहरी हों अक्षर
अभी तक वही (अक्षर हैं) रक्षक अमन के
अभी तक दमकते हैं, चमकते हैं।

(1954)

चिंगारियाँ[1]

1) नज़र

उठी
पलकों से ऊपर उठी
बाहर निकली, जैसे अप्सरा
दिशा–दिशा, घूम घूम
लौट आई, फिर भीतर पलकों के गई
धीरे से, पुतली ने कोई भेद की बात कही
हम क्या जानें
हम ने केवल इतना देखा
पलक गिरी
और फिर आंसुओं की धारा।

(1957)

---

1. (जितनि)

2) अकड़ी–ऐंठी[1]

अकड़ी–ऐंठी
इस खिड़की की तो जैसे
चूलें ढीली हो गई हैं
खोलते हैं तो चीखती है
आसमान सिर पर उठा लेती है
जैसे किसी बहू को ऐंठू ननद से पाला पड़ा हो
खोलो तो अकड़ती है, बंद करो तो अकड़ती है
बात बात पर इसका उलाहना
सुनना पड़ता है।

(1957)

---

1. मू० क० (वर–हॅज)

'काठी दरवाजे' से घर तक[A]

झक्क फूल खिल आए झलमल,
बड़ी भीड़ है लोगों की,
तारों के ऊपर (बैठे हैं)
झुंड अबाबीलों के
'ज़ंगत्रय'[1] पर लोगों की उमड़न,
धूप खिली है,
भरा चबेना है आंचल में
जोर गरम है चना चबेना,
पेड़ फिरकियों का ऊँचा बना है,
रंग निखर आए हैं इसके,
हैं किशोर अभिलाषाएँ,

***A** (मू० क०–कॉठ्य दरवाज़ु प्यठ गर ताम)*

'काठी दरवाज़ा' = हारी पर्वत के चारों ओर बनी ऊंची फ़सील (दीवार) में बने विशाल दरवाजों में से एक प्रमुख दरवाजा।

1. ज़ंगत्रय –चैत्र शुक्ला तृतीया । इस दिन स्त्रियाँ 'शगून' (शुभ तिथि मानकर) के लिए मैके जाती हैं। फिर वहां से कहीं घूमने या पिकनिक पर जाया जाता है। दो एक दशक पूर्व 'बादाम बाड़ी' जाते थे, जो हारीपर्बत के दामन में थी और जहां से लौटते हुए विशालकाय 'काठी' दरवाजे से गुज़रना होता था। प्रस्तुत कविता मेले के दिन बच्चे को साथ लिए एक गरीबन मां की सोच तथा बच्चे आदि से वार्तालाप पर आधारित है।

मचल रहीं, हुलसाईं
"गरम हो बेटे, बहुत तप रहे"
एक पैसे की सीटी
कहां उड़ चली
"मुझको भी सीटी चाहिए"
"गरम हो बेटे, ताप तुम्हें है"
"प्यास लगी है
घोड़ा था मिट्टी का, टूट गया
लेना चाहता हूं मैं, एक नया घर"
"लला रहा है रे तेरा मुंह!
चेहरा सूज गया है
थके थके हो
सांस तेरी है तेज़ चल रही
तुझे बुखार है लगता रे"
"अब मैं जरा देर सुस्ताऊँ
मेरी बाईं छाती के नीचे (होती है)
धक धक धक धक"
नया 'भूगोल'[1]
व्यावहारिक गणित[2]
नई कापी के लिए
कागज़, दस्ता भर

1–2 पाठ्य पुस्तकें

"तू गरम है रे!"

"अब नहीं मैं चल सकता
अब जैसे भी पहुँचूँ घर
मुझमें अब तो सकत नहीं"

"च्वक् .चन्य'[1] लोगी री?"

"नज़लावर[2] है"

"भूख सिर्फ है इसकी आंखों में
इसका क्या विश्वास करें "

सावधान बच्चे!
बचना, मां जी

"तेरी बला लूँ
गोदी में तुझको हलराऊँ
एक जोत हो मेरी आंख की
मुझको तो है तेरी आस रे

"आओ बेटे
पुत्तर प्यारे !
एक 'डबल पैसे'[3] में केवल
सारी दुनिया,

"गरम हो बेटे"

"मैं भी देखूँगा जी 'लीला'
एक पैसे में

---

1. एक खट्टी जंगली सब्ज़ी *2. जुखामकारी* *3. एक पूरा पैसा*

दिल्ली भर की सैर"
'नॉविद कदल'[1] के पास ज़रा
एक घड़ी सुस्ताते हैं रे'
'एक आने की बुलबुल (बिकती)
एक मुझे भी मिल जाती तो'
'कानुल'[2] लोगां ?
"इसके क्या कहने हैं
यह वसंत ऋतु का पाहुन है
भागम भाग लगी रहती है इसको
होश करो रे पुत्तर
बचना, बड़ी मां
"आधे ही पैसे की पाव लगी बेचने"
"इसको है री बुखार, बड़ी बी
भाग बड़े हों तेरे
मेरे बच्चों बड़ों के समेत
फूले फले नित नया हो रहे"
नरगिस का गुलदस्ता
घूमते तारे
चंदा मां[3] के इर्द गिर्द
बादाम खिले हैं झगर मगर
दौड़ रहा है किलक रहा

---

1. रास्ते का एक पुल
2. एक हरा शाक
3. चंदा मां– कश्मीरी में 'चंदा' स्त्री लिंग भी है।

"चिंता की कोई बात नहीं हैं
देखो दांत किटकिटा रहा
' वो (ऊपर वाला) इसकी साँस रखेगा
आसमान अंगूरी
भूरे फूलों की बौर
'भूगोल' नया
'व्यवहार–गणित'
यह "मेरा छोरा है पहलौटा"
कठिन समय में ('वह' सब का) रखवाला है
छोरा मेरा है सुस्त ज़रा
प्रभु इसकी रक्षा करेगा,
श्वेत, कसौटी पर जो निकले
उसका मोल भला क्या होगा?
आधा ही शुद्ध सोना है
दस का होगा या बारह का",
"संग श्याम के
मिलन सुनहरे का ज्यों होता,
नीले के कंधे पर ज्यों हो श्वेत चढ़ा;
"तेरी बलाएँ लूं
मुझको है बस तेरा आसरा,
मेरी आधी आंख के प्रकाश रे
तुझको गोदी में ले लूँ मैं,
तुझपर अपनी जान छिड़क दूँ,
तुझे पसीना आया है रे.
माला के जैसे हों दाने
शर्माए से सिमटे सिकुड़े"। (1950)

आँधी

दौड़ी आई है पर्वत को लांघ आज
सब को चुभती
सब से कहती–
सुनो सुनो जी, बर्फ हमारे यहाँ गिरी

लोगो, सुनो, मुबारक तुमको! तुम्हें मुबारक!
लोगों ने ढाँपा लोइयों से चोटी सिर सब अपना
और–जा बैठे अंदर।
आँधी को अपमान लगा
ले आई बर्फ
भर भर कर आँचल में।

(1958)

1.(मू० क०–छ़ठ)

धुँध [1]

धीरे धीरे चली
नदी के किनारे किनारे
चढ़ी, पहाड़ों पर
रास्ते नापती
धीरे धीरे बढ़ती व्यापती
ग़मे दुनिया की तरह
सब को ले रही लपेट में
अपनी मलमल के अंदर।

(1958)

---

1. (मू0 क0 –'वुनल') नादिम' के कविता संकलन 'शिहिल्य् कुल' में यह कविता (पृ0 90 पर) अलग दी गई है। पर इस का अधिकाँश इसी शीर्षक वाली एक और कविता का एक भाग है जो पृ0 108 पर है और जिसका संपूर्ण अनुवाद इस पुस्तक में पृ0 64 पर प्रस्तुत किया गया है।

बापू

ऐसी उमंग कि जिसने अंधियारे में प्रकाश को था चीन्ह लिया
ऐसी उमंग कि जिसने वसंत का सुप्त समीरण जगा दिया
ऐसी उमंग कि जिसने उखड़ी सांसों को उड़ना सिखलाया
उस उमंग का नाम है गांधी
उसको हमने 'बापू' की प्यारी उपाधि दी।

जिसने सच्चाई की बंसी को शोधा, वही साज़ है
जिसने प्रभात की आशा को ज़िंदा रखा, वही साज़ है
जिसने समय समय पर सत्संदेश दिया, वही साज़ है
उसी साज़ का नाम है गांधी
उसको हमने 'बापू' की प्यारी उपाधि दी।
साहस वह जिसने सब के सब तोड़ दिए अवरोध
अत्याचार के दांत भयानक जिसने डाले तोड़
फूंक प्यार की गारी और तलवारें डालीं तोड़
उस साहस का नाम है गांधी
उसको हमने 'बापू' की प्यारी उपाधि दी।

था केवल झंकार तार की, बना बादलों का गर्जन
चढ़ा पहाड़ों पर लहराया बना आंधियों की सिहरन
समंदरों के पानी जैसा बना एक व्यापक कंपन
उस झंकार का नाम है गांधी
उसका हमने 'बापू' की प्यारी उपाधि दी।

(1959)

मीठा कड़वा[A]

(मिश्री और कड़वा 'व्यन्[1] पत्ता)

बिजली की बत्ती पर उड़ रहे दो मच्छर
खड़े रँगोली[2] के ऊपर दूल्हा दुल्हन,
उधर पेड के साये में नरगिस उग आई
अभी लीप के चौका बासन रोशन दान से झांक रही,
कोई मुग्धा पानी पानी हुई ओढ़नी के भीतर
सुंबुल[3] की सुगंध के झोंके ने वातायन खोल दिया,
बीच गांव के खिल आया है एक चंदन का पेड़,
नीला परदा सिहर उठा
नहाने चली क्लोपैतरा है शायद,
फूलदान में दो कलियों पर
उभरें हैं दो सूर्यों के आकार,,
शेषनाग के इर्द गिर्द लहराया सागर
कमलफूल पर ब्रह्मा ने है जन्म लिया,

A *(मू0 क0—नाबद त ट्रयव्यन)*

1. *एक कड़वा पत्ता जो औषध की तरह प्रयोग होता है।*
2. *लग्न से पहले रंगोली पर खड़े होते हैं दूल्हा दुल्हन*
3. *एक फूल*

आईने पर बजी चूड़ियाँ छनछन
मुझे लग रहा बजे रात के बारह होंगे
उस परदे के पीछे कोई बतियाता सा
दो दो आंखें उझक रहीं है बीच झरोखे
कितनी बड़री कितनी स्नेही
अपलक देखें, मुस्काएं, झूमें झूलें,
रेशम रेशम कोमल कोमल
फिसल चली है बिछलनपट[1] पर एक हिमानी
है चिनार तो बडप्पना है, शीतलता है
सरल सिधाई 'सरो' पेड़ की खड़ी ऊँचाई
सोन चिरैया झट उड़ चली और चढ़ी नभ
शायद सहसा कोई मृगी आग में कूदी
कहीं कर्ण ने कुंती को तो नहीं पुकारा ?
जैसे कोई शिशु जन्मा है किसी खरिक में
दीवार–टंगी तस्वीर ने लो आंखें तरेर लीं
दस दिन बाद मजूरन पति से बतिया पाई
चांद रात के अंधियारे में अस्त हुआ जब
पहन ज़रा से वसन, मरियम धीरे धीरे
उस पर्वत के दामन में छिप कहां गई ?
ढेर ललाई झलक रही प्रभात के मुख पर
बादल की तो कनौतियाँ भी लला गईं
बिखर गईं लो हवा की जुल्फें
दूब, राख सब कुछ उपवन में हुआ पसीना
ऊपर नीचे देहलता 'हिय[2] की छरहरी
सिर्फ मध्य में लाल लाल उन्नत उभार
मिश्री 'व्यन' है, 'व्यन' मिश्री है
शकुंतला फिर नैहर को रे लौट चली !

(1956)

1. 'लकड़ी के फट्टे जिनपर बैठकर बर्फ पर फिसलते हैं।

2. *हिय फूल*

तुम्हारी कब्र के पत्थर के पास[1]

पिता को जानता था मैं, मगर जानूं न दादा को
रहे बाबा, सुना है नाम उनका सिर्फ कानों ने
पिता थे कौन उनके और उनके कौन बाबा थे
छिपा है राज़ यह गतकाल के विकराल डैनों में
पड़ा हो घोंसले में ज्यों सुरक्षित संगे फारस[2]
कि खोई, हो गई हो व्यर्थ, जाने कहीं कोई खान सोने की
बचे कुछ कण रहे हों मिले जैसे रेत में
जिन्हें पानी संभाले साथ अपने बहा लाया हो
सहेजा उन्हें हमने फिर, आभूषण मढ़ाए
मां के लिए एक 'डेजिहोर,' बहन की 'गलबंदनी'[3]
परदादा बड़े थे 'हलमत'[4] और 'उदयन'[5] और 'रिंचन'[6]
'ताज़ीभट'[7] था कोई 'कल्हण'[8]
आया मैं यहां तो याद सब कुछ आ गया
तुम्हारी कब्र के मैं पास पहुँचा हूँ

---

1. मू० क०–चॉनिस पीरिस नख़
2. पारस
3. आभूषण 4–7 कश्मीर के प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तित्व
8. इतिहासकार कल्हण

क्या क्या भाव जाने उभर आए मेरे मन में हैं
खोल कर ढक्कन, गुड़िया की पिटारी का
चुराकर ले गया कोई महकती गंध का रेला
प्रकाशित हुए मन के अंध कोने और कोटर
मिली हो ख़ून को ज्यों ख़ून की सी बास
कि खोजे माँस को नाख़ून और नाखून को भी माँस
तुम्हारी कब्र के पत्थर पे धीरे से समय ने
है फेरा हाथ, चढ़ाया रंग बुढ़ापे का
(किन्ही) 'शास्तरी'[1] अक्षरों में, (कुछ) आशीष कश्मीरी–
रखे गढ़ के (और जड़ के) जाने किसी मित्र ने
हम दोनों का पूर्वज बाबा
पला बड़ा हो गया होगा कहीं इसी मुहल्ले में
प्रणय, प्यार और मिठास, मुहब्बत
बसे विकसे भी होगें यहीं पर रंगभवन में
हमारे और तुम्हारे वंश का था मेल मौलिक असल का
हमारे द्वार घर आंगन होते थे बराबर में
वो 'ताज़ी भट' वो 'शाहमीर', और 'सुय्या'
पहुँच कर यहां भी मुझ को याद आए सब
यहीं पर किसी गली में, मेरे साथ तुमने
खेला रोज़ होगा खूब गिल्ली और डंडा
लगा चीरा नरसल की कलम की नोक में हमने

---

1. अर्थात शास्त्रीय या संस्कृत /शारदा लिपि में (15 वीं सदी तक की कुछ कब्रों पर अरबी के साथ शारद लिपि में भी विवरण खुदे मिलते हैं।)

लिखा होगा तुमने 'बिस्मिल्लाह'
कभी मकतब से तू लौटा जो होगा
खाया भात होगा, बचा जूठा बाबा का
कभी शिवरात्रि पर या ईद पर ही
खेली कौड़ियाँ भी दोस्तों के संग होंगी
तुम्हें भी सत्य पर झगड़ा कभी खुद ठान लेने का–
बराबर मन किया होगा,
यहीं निच्छल मन से चाहना होगी तुम्हारी भी
खुदाया ! ना रहे कश्मीर में मेरे कोई भूखा,
चारों ओर सुख और शांति छा जाए
तुम्हें भी देख कर यह, क्रोध आया हो
सजें सुख–स्वर्ण में गदहे, घोड़े घाव झेलें (पीठ के)
कितनी बार गुस्सा पिया होगा तुमने
आओ आज हम फिर मिलें भाई और भाई
बांटें और हल्का करें सुख दुख एक दूजे का
करें हम याद वे दिन फिर (वही दिन)
(करें हम याद) 'लल' के 'वाक', 'नुंद' के 'श्रुक' (दोबारा) [1]
कि जिससे सब नगर वासी पड़ोसी पास के
गहरी नींद से जागें, हमारी ओर देखें
हमारी ओर देखें, अपनी ओर फिर देखें
अपनी ओर देखें और अपने आप पर सोचें

(1959)

1.ललेश्वरी और नुंदऋषि के छंद

सॉनेट[1]

मुझे अब इस जगह बैठे हुए गुज़री उमरिया
रहूं अपने ही घर में ज्यों रहे छाया पराई
मेरे दुख का नही हल है, करूँ बस आहो ज़ारी[2]
समय बहुरूपिया रह रह हमारा मुँह चिढ़ाता
है कितनी बार मैंने मन को समझा बुझाया–
पिराएगा ह्रदय को नेह, जिगरा में चुभेगा ही
पलड़ा रहा ऊपर इस तराजू का सदा ही
नहीं कल की छुअन व्यापे ,लगे जो आज मीठा
तनिक यह शौक़ से पूछो, थका तू तो नहीं रे
तेरा यह तन स्वयं तुझ को बना बोझा नहीं तो
बिना पानी रहा सर बीच तू सूखा नहीं रे?
पड़ा क्या फेर गिनती में, तू चूका नहीं तो
बसंती सुख लुटाया, था जिन्हें सुख लूट लेना
तुझे सपनों की दुनिया को अभी है नाम देना।

(1959)

---

1. तुक योजना

क ख ख क, क ख ख क, ग घ ग घ, च च (मूल की सी रखी गई है)

2 आहो–ज़ारी= विलाप

धुंध[1]

न इसका (आगे) मुंह या (पीछे) पीठ
नहीं कोई सूरत इसकी
अनजान, भुलाया गया ख्याल यह कोई
शायद ठंडा पड़ा हुआ,
किसी ने इसका नाम पूछा
तू ही है री धुँध?
वो नदी किनारे धीमे धीमे चली
गलियों से ऊपर सडकों पर आई
राहें रही मापती बढ़ती, घनी हो रही
दोनों बाहें भाँज रही
जैसे हो दुनिया का ग़म
सब को कोंचता है
सब की अक़्ल धुँधुआता है।
कभी अचानक चली जाएगी,
जल जाएगी गल जाएगी आखिर
तब हम शायद एक दूसरे का मुँह देख सकेंगे।

(1959)

(1. मू0 क0– वुनल)

घास का तिनका[1]

इस तिनके की गत हुई ठीक मेरी जैसी
इसमें जब थी नमी, रेशम सा चिकना था
चाहे हवा लहरा देती या ताप तपा देता
अब शीतकाल की रातों में सारा स्नेह इसने खोया
कड़वाहठ पाई और झूठी अकड़ अपनाई
समय निकल गया हो जिसका,
बदला करता उसका स्वभाव
उसकी अपनी ही भूमि निकल जाती है, पैर तले
अब इसको जो मारो फूँक तो टूट जाएगा
ज़रा धकेलो तो
चूर चूर हो जाएगा
आग दिखा भर दो
राख और धूर हो जाएगा।

(1959)

---

1. मू० क०—गास़ तुल

चोर[1]

कोई मेरे यहां चोरी करके चला गया
बेकार मैं भागता फिरा उद्यानों में
तितलियाँ पकड़ने
रंगभरी छायाओं ने मारी आँख
मुझे ललचाती रहीं
दिन मेरे ऐसे गए बीत और मैं समझा
बस मैं ने सब कुछ पाया
और उधर कोई आया और मुझे लूटकर
चला गया–
धूप के छींटों के, वसंत के
और शरद के मेरे सारे रंग–
घाम की रुत में उछलकूद निर्बाध
(शीतकाल में) बर्फ के आने की शर्तें,
हंसती मेरी हर्षित उमंग,
बाँटता जो मैं, वह मेरा प्यार
सब समेट बटोर करके ले गया चोर
अब क्या मेरे पास बचा है!
टूटी एक काँगड़ी
जिसमें एक बर्फ की सिट'।

(1959)

1.(मू० क०– चूर)

नज़्म[1]

अनायास थम गया समय तस्वीर पर,
हर पेड़ उन्मत्त खिला
कागद का पन्ना जंगल में बदल गया
जो पगडंडी की लीक पकड़ चला, वही जंगल पहुँचा
अपनी साँस उसाँस ही का यह सब उन्मेष है
वरना, जंगल कहाँ, कौन हवा ?

अनायास उसको देखा पहचाना रंग
लूँ पुकार —चाहा पर साँस ही अटक गई
नाम लेना चाहा पर जीभ ने मेरे होठ सिले
और मेरे मुँह को डाट दिया ,
दोपहरी में ही रात ने लपक लिया ज्यों आसपास को
बिजली हुई अशक्त कि जैसे लगी उजड़ने।

(1960)

---

1. *यह नज़्म तुकांत है। मूल की तरह अनुवाद में तुकयोजना का पालन नहीं हो सका।*

तुम्हें याद है?

तुम्हें है याद क्या कुछ बरस पहले धूप के दिन एक
कि पिछले पहर अपने गरम आँसू से धुलाकर
तमन्नाएँ सुलाकर गोद में चुपके
मैंनें धड़कनों के संग भेजीं थीं तुम्हें शुभ कामनाएँ
कहा मैंनें सुखी हो सिर रहे ऊँचा तो जीना
तुम्हारे भाग में हो प्रणय–वन की बादशाही।
मगर तुमने वो दुनिया मिटा ही डाली
मेरे कोमल मनोरथ पर कि ज्यों पुत गई स्याही
मेरी दुनिया ज़रा आगे तो आओ देखते जाओ
कि कितनी विफल होकर घुट मरी सब कामनाएँ
हुई मेरे खयालों की परेशान हाल साँसें
तुमने, फूल जैसा प्यार मेरा था, मसल डाला
वसंती बौर मेरी, बीच ऋतु के, हुई वीरान है,
जचा है सिर्फ बिजली को बिचारा घोंसला मेरा–।
पठारों पर मेरी साथिन बहुत प्यासी परेशान है
मेरी चिर काल की साथिन, मेरी मनकामना
अरे गुस्सा करो क्यों, याद यह बात तुझको दिलाई जो?

(1960)

1.मू० क०–च्यतस छुयि

नज़्म[1]

आज भी मैने सुना
झर गई है महक फूलों से
आज भी मैंने सुना
इंद्रधनु के रंग सोखे गए हैं
आज भी मैंने सुना
ओस अजगर बन गई है
आज भी देखा कि बच्चों की किलक
खून से लथपथ हुई है
आज भी मैंने सुना, वक्षतल का स्नेह
पीला पड़ गया है
आज भी देखा कि जीवनमयी ममता
देखते ही देखते पथरा गई है
बेज़बान, रे मूर्ख, रे कायर!
सुना तू ने भी मगर
नहीं लगती आग यह सुनकर?
देखकर यह सब
उल्लसित भी तो नहीं होते?
मैं पसीना पसीना हूँ, बात गूंगी हो गई है
क्या करें!
यह कौन 'खट खट' कर रहा
कौन दर पर कर रहा 'खटखट'
बोलती मेरी हुई अवरुद्ध है जब सुनूँ खट खट
तुम्हारे यहां से हो आया
सुबह का पवन यह तो नहीं?

(1961)

---

1 *उर्दू की तरह कश्मीरी में भी नज़्म मुक्तछंद, पर प्रवाहबद्ध कविता को कहते है।*

हादसे[A]–1

1

गुल दाऊदी ने गेंदे को चीन्ह लिया
उस को दी आवाज़ घड़ी भर रुक जाना रे
देखो, धूप की कनौतियाँ अभी लाल हैं
अभी न जाओ, जल्दी क्या, है दौड़ भाग क्या?
वो बोला, तेरा तो जोबन उफन रहा है
पर भाई , मेरा बचपन चुक गया कब का
तुझे देखना होगा झाड़कांड पतझड का
और महक के झोंके चलाना मेरे ज़िम्मे ।

2

बड़ी ठसक से झरने के पानी की रेखा ऊपर से नीचे उतरी
काठ का तिनका साथ बहाती जैसे सिर पर ताज लिए
"अभी वितस्ता में आएगी बाढ़ और डूबेगी दुनिया
फिर तो मेरा राज चलेगा"
एक चपेटे से तिनका रेतीले तल पर अटक गया।
बल तो कभी खोखले पन का लेता नहीं सहारा ।

A. मू० क०–हॉर्य्‌साथ

कुछ पदों में प्रवाह बना के रखा गया है और कुछ गद्यवत

3

रात की चुप चुप में शबनम ने जन्म लिया
पत्ता पत्ता पानी पानी (शरम से) हुआ
सुबह की किरण का तो मानो रंग उड़ गया
पाले के ऊपर जब उसने त्यागे प्राण ।

4

एक सफेदा अकेला और नंगा किनारे पर खड़ा था
जैसे कौवों की पंगत की बगल में एक और कौवा हो
एक चिनार के पत्तों में खलबली मची–
जब बच्चों की एक टोली 'काँय' बोली,
लताड़ कर, धकिया कर शाखाओं को
कौवों की जमात फुर्र से हवा हो गई –
सफेदे ने चारों ओर खोजती नज़र डाली
वहां वो था या था प्रभु का नाम, और बस।

5

हवा का एक झोंका दावत पर चल पड़ा
उसका मन किया कि मेला देखा जाए
कहीं से तूफान का रेला आया और उसे फाँस ले चला
उस पर वो बीती, जिसकी उसे कभी आदत न थी!

6

बादल का एक टुकड़ा सटकते हुए पहाड़ पर जा चढ़ा
बिजली आई और उसके गरेबान को चाक कर दिया
वह 'पांचाल'[1] की गोदी में फँस गया

1.पांचाल – कश्मीर घाटी के दक्षिण में एक पर्वत श्रृंखला

जाल में ऐसा फंसा कि उड़ना मुहाल हो गया
पत्थर ऐसा गाँठ में बंधा कि पाताल जा उतरा
जैसे बच्चा मुट्ठियाँ भींचे और रो पड़े
हमने कहा चलो बादल गड़गड़ाने लगे हैं
कि इतने में घर बर्फ से सराबोर हो गया
यह तो दोस्त ने दोस्त को घर दावत पर बुलाया था
वरना नई बर्फ से कौन पूछता कि तू कहां जन्मी?

7

एक पत्ता पेड़ की डाली से कट गया
चकराता लहराता ज़मीन पर गिर गया
दूब ने कहा यह तो मेरा मीत है
कुठाँव लटक रहा था अब सपाट पर आ बैठा।

8

सड़क उछल पड़ी और गली की ओर गई
वहाँ अँधियारी जड़ें जमाए बैठी थी
दो दरवाज़े मुंह सटाए बंद खड़े थे
और धीरे धीरे बतिया रहे थे
सड़क को देखकर दोनों हँस पड़े
हम तुम से बोलते पर बात बढ़ेगी।
नीचे कहीं 'ही' लता के दो आँसू चमक रहे थे
और ऊपर आकाश पर तारों की दीवाली हो रही थी।

9

एक कजलौटी हँड़िया छत से टपकती धार के ठीक नीचे लगी थी
जैसे कोई धोबन झील डल में मुँह धोकर आ गई

उसके उम्रों कमाए पुन्न और जन्मों चढ़े पाप
धुल धुल गए
तभी कोई आया और उसे पैर से ठोंक दिया
और इससे कितनी ठेकरियों ने जन्म पाया
दो दिन बाद गली में शिटापो[1] का खेल लगा
और दोज़ख[2] से जन्नत[3] की तरफ पैरों की छांह आगे बढ़ी।

10

जूते का एक पैर राह पर पड़ा था
मुंह खोले जैसे प्यास बुझाना चाहता हो
एक कुत्ता आया और उसे खींच खांच लिया
उसके टूटे मुखड़े को नोच ही डाला
फिर पटक कर नाली में फेंक दिया
चलों प्यासे की प्यास बुझेगी, शायद बात बनेगी ।
उधर एक ईट ऊँचे सुर में पत्थर से बोली–
तू है री ऊबड़ खाबड़ अनगढ़ और मैं हूँ महारानी।

(1962)

---

1. बच्चे उछल कर लंगडी बनाकर ज़मीन पर बने खानों (घरों) में ठेकरी फेंकते हैं–शिटापो या स्टापो
2. शिटापो में एक घर का नाम। अर्थ=नरक
3. अर्थ =स्वर्ग।

हादसे[A]–2

1

कंकड़ एक रास्ते पर था पड़ा किनारे
कड़ी धूप में गिनता था वह दिन दिन पलछिन
ढेर लगाया ठेकेदार ने उसके चारों ओर,
बना पहाड़ अनायास ही बजरी होकर
तारकोल की सड़क थी उसके भाग लिखी
टूटा, पिसा (बना बेचारा) रेत महीन।

2

मिट्टी से फूलों ने जब मशविरा किया
फिर तो जाने कितनों ने, रे, झेले दाग़
उसके बस में ज़िद्दी घास हुई तो उसके बाल कटे
लोग कहें, है अब तो सुहा रहा यह बाग़
धूप क्यारियों के ऊपर ऊपर है फुदक रही
लेकिन छाया उसके पीछे पीछे बैठी ताक में।

3

आई उतर पहाड़ों से फिर परी महल की ओर गई
चली वितस्ता–नदी किनारे, सैर सुहाने चली हवा।
लकड़ी के तिनकों का रेला साथ चला

A. मू0 क0–हॉर्यसाथ

पानी के ऊपर जैसे डोले बेचप्पू नैया
थोड़ा बह कर तिनके रेतीले उथले तल पर बैठे
'हक'[1] कहलाए वे टुकड़े जब 'हक' उन्होंने पहचाना

4

पेड़ की सब से ऊंची फुनगी सुबह सुबह ही कांप उठी
उसने जब ज़मीन पर फैली अपनी ही छाया देखी
नज़र उठा कर उसने देखा आसमान अपने ऊपर
क्षण भर उसे लगा कि जैसे यह भी तो धरती ही है
इतने में आंधी आई और पेड़ का नखशिख झिंझोड़ा
पीड़ा तो चुपचाप सही, पर तब से " उँह उँह" उसे लगी।

5

नाव का थूथन बंद किया, रस्से से बांधी अगली नोक
मांझी ने तट की खूँटी पर,, डाली सारी ज़िम्मेवारी
लहर आ गई चुपके से, धचका देकर चली गई
झटका एक लगा तो खूंटी उखड़ गई, बाहर निकली
आती है जब बाढ़ , अड़ा, किससे कैसे सकते उसको ?
बुद्धि उसी का देती साथ, जिसका माथ भाग्यशाली।

6

दो आंखे झाँकने जो निकलीं खिड़की से
झोंपड़ियों में भी वासंती हवा चली
बेदों ने भी पहना दुल्हन का जोड़ा

---

1. *भारी होकर नदी तल पर जमे वूठ तिनके कश्मीरी में 'हक' कहलाते हैं। बोरों में भरकर बालन के तौर बेचे जाते हैं। यहा हक' (सत्य) से ध्वनिसाम्य दृष्टव्य है।*

नृत्य के लिए पायल सिर पर रंग भरा
अभी भवन में कलरव का एक मेला था
अभी लगे किवाड़ न सुर है,नहीं सदा।

7

पगडंडी थी एक दौड़ती भाग रही खेतों में
सन्न रह गई रुकी अचानक जब नाले के तट पहुँची
बुलवाई दूसरे किनारे गांव की सड़क,फिर उसने
नदी पे आने वालों के हाथों संदेसा पहुँचाया,
अनखाती बड़बड़ाने लगी तब उस नाले की आवाज़
सुना शहर का और गांव का जब उसने सब समाचार।

8

मारते झख रहे कौवे सफ़ेदों पर
बुलबुलों ने घोंसला अपना सजाया
काम आए घर सजाने में जो तिनके,
से लिया बुलबुल ने, बच्चों को जिलाया
उड़े तो, किस्सा खतम नवजात बच्चों का हुआ
शांत यों सब कुछ हुआ, कुछ हो न पाया।

9

जाने हवा कहां रास्ता भटक गई
फँसी राह में उलझ गई जैसे कि भँवर में
पत्ता पत्ता बोला तो कोहराम मचा

---

1. *चक्कर काटते और घास पत्ती को घुमाते बवंडर को कश्मीरी में 'शैतान' कहते हैं।*

रहा काटता चक्कर बीच बवंडर[1] में
धूल के रेले के मन में शैतान बसा
पड़ा दोपहर में बिपता के समंदर में।

10

हवा वसंती हमारे घर दुआरे चली
कोसती खुद को रही सी मल रही थी हाथ
हो गई क्या बात हमने फूल से पूछा,
तो, पड़े थे काटते ज्यों होंठ, किनारे के पास
कुछ काठ के टुकड़े दिखे, शरद के सूखे
वंसत में भी खड्ड में, हांफते सिर धुन रहे।

11

'क्राल संगुर'[2] निकल पड़ा झील डल की सैर को
बार बार लोगों ने, उसका मुँह छीला–नोचा
झड़ी लगी बरखा की, उससे चुआ पसीना जैसें
खड़ी शिलाओं पर टप–टप टपका उसका तन गीला
मिट्टी ने तो अपना अर्जित हमको भेंट किया था
लेकिन बना ठीकरा वो ही पथ पर लिथड़ गया, जब सीला।

---

1. चक्कर काटते और घास पत्ती को उड़ाते छोटे. चक्रवात को कश्मीरी में "शैतान" कहते है।
2. झील डल के पूर्वी किनारे पर एक पर्वतश्रृंग जिसकी परछांई डल में दिखती है।

शीतल छांहा पेड़[1]

शीतलछांहा पेड़ बड़ा ज्यों अपना ही कोई पूर्वज

है विशाल, भागों वाला 'रायिल' सा उन्नत इसका कद
क्या है इसकी उम्र नहीं कोई हिसाब
ऊँचाई की महिमा इसकी लाजवाब
यह ज़मीन है इसके पाँव , हद ऊपरी आकाश ।
शीतलछाँहा पेड़ है हमारा ही पूर्वज।

अनंत इसके पत्ते शाखाओं की संख्या, क्या कहने
पत्र पत्र ताज़ा टटका, पल्लव चिरवांसती क्या कहने
हरियर दमक रहा है, चमके जोत सा
चिर वांसती सुख से ओत प्रोत सा
सींच स्वर्ग से देवों ने लाया चिनार है, क्या कहने
शीतलछांहा सदा बहार सुख स्रोत सा।

यह वासंती बदली के अलकों का सागर गहर गंभीर
शीतल चंदन सा चुपचाप लुटाए शबनम सुरभि–समीर

1. मू0 क0–शिहिल्य् कुल

बड़ा स्नेही प्यार भरा आश्वासन है
मेरी मां का ममतामय आलिंगन है
'पोशिनूल'[1] का सरस बुलावा प्रिया 'नूज'[2] को है अधीर
शीतलमंद बहारों का यह सुपवन है।

कहते हैं कि जड़ों में इसकी पूर्वजन्म में अमृत डला
दैव ने इसपर पावन हाथों को फेरा तो खिला फला
कभी नहीं है इसका रंग पड़ा फीका
कभी नहीं है इसका गरम हुआ माथा
आकाशी गंगा ने सींचा, यह उसका लाडला लला
इसे दैव' ने खुद ही है पाला पोसा।

आसमान के पंछी इसको रहे ढूंढते बड़े प्यार से
छहों दिशाओं, दिक्पालों ने चाहा इसको है दुलार से
सब ने किया फैसला हम तो यहीं रहेंगे
खेलेंगे और कूदेंगें और हँसें बसेंगे
जन्मेंगे, जी लेंगे फूलें फलें मिलें विस्तार से
सुंदर पंछी केवल यही रहे उचारते।

कुछ गोरे कुछ श्वेतवर्ण के, हरे गुलाबी कई साँवरे

---

1. पक्षी

2. नूल की मादा 'नूर'

3 'अजमी' – यह अरबों के द्वारा विदेशियों को दिया हुआ नाम था।

कुछ तुर्की, कुछ 'अजमी'[1] कुछ देसी परदेसी गाँव के
पर इन सबके यहीं घोंसले सदा के बने
सब के पूर्वज माता पिता यहीं के जने
ईद यहीं बैसाखी होली रंग यही के यहीं बाँकुरे
एक सभी, गोरे या श्यामलरंग से सने।

तरह तरह के बोलभाष इन सबके जैसे बजे बाँसुरी
तबला, सरोद घट सितार लेकिन, राग एक वही असावरी
टीं – टीं, टिरिव – टिरिव और पीयो'
चीं – चीं चिरिव – चिरिव पिय – पीहो
भिन्न स्वरों में सदा एक, बड़पना हमारा है बखानती
बजे बांसुरी, बोले जीलो !

(1962)

बारानी कोट*

मैं कमरे में गया
और अपना बारानी कोट उतार लिया
उसे दीवार की खूंटी पर टांग दिया
अनायास मुड़ कर मैं ने
आंख भर उसे देख लिया
मुझे लगा कि जैसे मैं ही हूँ
कोट की खूंटी पर टंगा
वही मेरे कंधे , वही मेरे लंबे बाज़ू, वही शाने
वही कद लंबोतरा, वही गला गोलाकार
काजों की खींच–खसोट से बटनों का बिगड़ा हुलिया
ऊपर से नीचे उसे आंख भर देखा,
दरवाज़ा खोला और मैं बाहर निकला
बाहर निकला तन से, बाहर उस ठांव से
बाहर भवन से, बाहर दूकान से।

उनके यहां कोई दो जने आए, पूछने लगे–
"उस स्वर्गवासी का कोई निशान कोई चीन्हा है

**बरखा–बर्फ से बचाने के लिए भारी ओवरकोट*

आपके पास?

कोई उसकी उतरन, कोई कपड़ा, सिर का कोई टोपा?
कागज़ का कोई पन्ना, कोई उसकी ताज़ा रचना?
आखिरी दिनों में पहना करता था
जो बारानी कोट? "

"जी हां कोट था
ऊपर कमरे में आलगनी पर लटका है
पहले पहले उसे देखने का मन नहीं करता था
फिर एक एक करके सब ने पहना
जब तक उपयोगी रहा, पहनते रहे, फिर उठा के रख दिया
कुछ दिन हुए, एक कबाड़ी आया
हमने उसे बेच दिया।
पर आपके किस काम का था वह?"
"जी, हमें वह चाहिए था साहित्यिक म्यूज़ियम के लिए
कृपया कुछ अता पता बताएँ
और यह कि आपने वह किसे बेचा था?
शायद मिल जाए..........।"
"कहां मिलेगा जी, कैसे मिलेगा
कबाड़ी के यहां होंगे पुराने कपड़ों के ढेर
कहां ढूंढ़ते फिरोगे?
हां कोई चीन्हा जानना चाहते हो तो सुनो
अस्तर पर उसके, दर्ज़ी की यह लेबल
तुरपी हुई है–
"शेख़ इलाही टेलर मास्टर"।

ज़िंदगी

ज़िंदगी है श्वास नल्लिका का केवल न उतार चढ़ाव
जिंदगी है धड़कता भर हृदय नहीं
हर ज़िंदगी एक धागा गीला है
जब तक इस में नमी, तभी तक आकाँक्षाएँ
चलो छोड़ दो खुला अभिलाषाओं को
कब तक इन को गले से पकड़ रोक सकोगे?
इतना समझो बड़ी चंट है, झापड़ मारेगी ज़िंदगी
परन्तु अपनी असली झलक कभी नहीं दिखाएगी।

(1962)

---

1. उर्दू की तरह कश्मीरी में भी 'नज़्म' मुक्तछंद, पर प्रवाहबद्ध कविता को कहते हैं।

काँय काँय[1]

सफेदे पर के कौवे ने लकड़ी का एक टुकड़ा उठाया,
उड़ा और ले चला उसे पेड़ की ऊंची फुनगी पर
शाखा पर उसको संभाल कर, टेक के रखा
इतने में हवा का झोंका आया, उसको गिरा दिया
तूत पर के कौवे ने वह टुकड़ा देखा
ताक में था वह बहुत देर से
झट से उस ने उठा लिया, ऊपर पहुँचाया
और पेड़ के कोटर में वह टिका दिया
झड़ी लगी बारिश की, टुकड़ा गिरा दोबारा
एक चिनार पर के कौवे ने उसे राह में पड़ा पाया
चुपके से उसको पत्तों के बीच छिपाया
किसे पता अब हवा उसे यों ही रहने देगी
न अब टिक रहा लकड़ी का तिनका ही कहीं,
न ही घोंसला
आज सुबह से सिर्फ सुन रहे हम हैं
काँय काँय काँय काँय।

(1962)

---

1. (मू0 क0—टावाह टावाह)

ओ रे चोरो[1]

चोरो रे चोरो!
ओ रे फल –चुराने वालो!
बची पेड़ की फुनगी पर एक नाशपाती है
नहीं छोड़ना इसे, गिरा दो इसे लठ उछाल कर
बरखा बर्फ सभी से बचकर टिकी ही रही यह मुँह झौंसी
ओले छाती पर लिए, सही आँधी इसने
बर्फ बारिशों ने भी कुछ कमी नहीं की
लेकिन यह जस की तस बस डटी रही
अब डांड बढ़ा दोगे उस तक तभी समझ जाएगी
समझेगी किस क़ीमत पर (यों डटी रही)
डांड न उस तक जाए तो सब कुछ डालो झाड़
सारे पेड़ को डालो झाड़
सिरफिरी नाशपाती खुद झड़कर गिर जाएगी
"शंकर की कुल्हाड़ी"[2] भी हो, आखिर टूटेगी ही
गिर ही जाएगी।

(1963)

---

1. (मू० क०–हे चूरव)

2. एक कहावत के अनुसार शंकर नामी हठी व्यक्ति का कुल्हाड़ा, जो पेड़में धँसा ही रहा।

गिनती का फ़ेर[1]

इस मरुस्थल में ठीक ठीक रखकर धँसाते पाँव चलो
गहरे नीचे नीचे नीचे
फूटेगा जल, तेरे पाँव का गहराया आकार भरेगा।
जल की ऊपर की तह होती है बेहरकत
पर जल का तल खोजने उतर गई
जो किरण एक तारे की, तह के बीचों बीच
तल पर टकराई पत्थर से, खाई चोट
उड़कर ऊपर वापिस आई
गुप चुप बैठी तेरी छातियों के उभार के भीतर
जैसे चिड़िया के बच्चे का वक्ष उछलता जाए
धक धक धक धक्................
(पर) तेरे कानों में रुई ठुँसी है
और मेरी आखों में छाई धुँध
आज एकटक देख रहे हैं, हम तुम एक दूजे को
हमने इस दुनिया पर जी को वारा, वारी जान
हमने इसे संभाला, इसे सहा और इसको पाला
फिर अपने ही पाँव का आकार
मिटाते चले
चलदिए, रास्ता साफ किए।

(1963)

1.(मू0 क0—ग्रॅज़ फ्युर)

(रद्दी) कागज़ वाले की पुकार*

बेचो रद्दी कापी कागज़ बेचो जी अखबार।
गुदड़ी कटे फटे कपड़ों का बेचो जी अंबार
दाना दुनका तिनका बेचो, बेचो जी खरवार
बदले में धन खूब समेटो बेचो जी घरबार

रद्दी कागज़ बेचो जी और बेचो जी अख़बार!
बहरे बनो भले सुन लो जी, देखो, फिर भी, अंधे
कोई कुछ भी करे, बनो तुम भोलेभाले भंदे
मनों खाओ बैठे ठाले जी, ले लो नहीं डकार
बंधक रखो ज़बान अपनी बेचो जी गुफ़्तार[2]

रद्दी कागज़ बेचो भाई बेचो जी अख़बार!

---

*(मू0 क0–कागज़ वॉल्य सुँज़ हख)

1 खरवार=एक तौल (विषेशकर धान, बीज आदि तौलने का) जो करीब 51 सेर का होता था।

2 गुफ़्तार=संभाषण, बातचीत, बोली

उस बंदे ने कैसे पाया जो सोचे वो मूरख
यह बंदा है गलत तोलता, जो बोले वो मूरख
मूरख वह जो करे अकारथ मेहनत, कारोबार
बकझक है हर बात यहां बकझक है बेकार
रद्दी कागज़ बेचो भाई बेचो जी अखबार!
वो बंदा ग़ैरत बेचे तुझको इससे क्या लेना
यह बंदा हितकारी है तुमको इससे क्या देना
राह खड्ड में जाती है तुमको क्या लेना देना
बचा नहीं तो बेचो आकांक्षाओं का संसार
रद्दी कागज़ बेचो भाई, बेचो जी अखबार !

(1964)

नात[1]

दृष्टि श्वेतिम और काफ़ी दूर तक
        रोशनी सुंदर स्नेह से पूर्ण
विश्व को ले गोद में, खोले रहस्यों को
सत्य तक एक सेतु बांधे
        असत्य का दे फोड़ भांडा।

पंख जब खुलते तभी से प्रेम उड़ना सीखता है,
फिर नया संकल्प राहें नित सुझाए नई नई,
आशा बढ़ाए कदम,
प्रेम मथ डाले समन्दर, बुद्धि हो आकाश
दृष्टि श्वेतिम दूर तक, सुंदर स्निग्ध प्रकाश
जाग रहता हृदय में जोगिया अंदाज़[2]
गरजता निर्झर कि जैसे बज उठे संगीत–अंतस
है बड़े ही भाग वाला
आस्था को जब करे पोषित–

---

1. पैगंबर हज़रत मुहम्मद की प्रशंसा में गाया गया गीत 'नात' कहलाता है।
2. समदर्शी निर्लिप्त फकीरों का जैसा अंदाज़

शराफ़त की आवाज़,

धीरे से अनावरण किया, मुहब्बत के गहरे राज़ों का

गया खुलता राज़, आदमी का क़द हुआ ऊंचा

कलंदरों[1] का सा (जोगिया) अंदाज़ वक्ष में जगता

यह नदी (व्यथ[2]) जब बही इस ओर

हमारा कश्मीर नया हो उठा था,

सच मिला सच से, बना अंतःकरण हमारा।

इसने मेरे दिल को सींचा, विकसा अंतःकरण तुम्हारा

इसका स्नेह बड़ा व्यापक है ममताभरा प्रभाव

यह अस्तित्व हमारा टिकता शान, प्रदर्शन, भोग पर

पर दुआ सलाम और असीस हैं पुण्य

हम को कुबूल करने होंगे।

है ऋषित्व[3] से प्यार –हमारे कश्मीर को..........।

यह 'रसूल' का प्रेम है,

गर्व इसी पर हमको ।

---

1. निर्लिप्त मस्त फकीर

2. व्यथ–वितस्ता

3 ऋषित्व–कश्मीर के संत सूफी (कवियों/अकवियों) की विचारधारा, जिन्हें उनके अनुभव के कारण 'ऋषि' कहते हैं। इस विचार धारा के विकास में वेदांत, शैवदर्शन, बौद्ध दर्शन तथा इस्लामी सूफीमत का हाथ रहा है।

क्रिसमस

काँप उठा मैं जब पहुँचा दीवार तले
आसपास दम घुटा हुआ थां सब का
घुटा हुआ था सांसों का उतार चढ़ाव
व्यर्थ हो गया समय, बुझा सा दिन है
मैंने लाँघी दीवार और सकते में आया (जब देखा)
लंबी कतार पेड़ों की नंगी और हड्डियों के ढाँचे
हमवार भूमि में नेज़े ही नेज़े बोए हुए हैं
फांसी का खभा खड़ा है और इससे–
नीचे से ऊपर तक सैकड़ों कौवियाँ लटक रही हैं
कुछ लटकीं सिर के बल कुछ पैरों से
कुछ गिरीं बिखर कर थीं ज़मीन पर फैली जैसे
झड़े शिशिर में हों पत्ते
अचरज में मैं खड़ा रह गया देखता, सांसें गिनता
ऊपर से आ टूट पड़े झुंडों के झुंड पंछी
बड़ा मचाया हो हल्ला चिड़ियों कुंमरियों मैनाओं ने
मुझे लगा चोरी करते मैं पकड़ा गया
मैं चकराया, आया वियतनाम याद
मेरी ज़िहन में उठी अचानक कडवी धुंध
मेरी नस नस के बीच शोर जैसा उभरा
जैसे चिपक जाए जलता अंगार त्वचा से सी ई ई ई करके
सिंध[1] (नदी) सा ठंडा मैं पड़ गया
गल गया हो हिम जैसे पानी में।

(1965)

1.सिंध=कश्मीर घाटी की एक नदी। इसका पानी कुछ दूर बह कर वितस्ता में जा गिरता है।

ठहर ज़रा सिंध के पानी*

ठहर ज़रा सिंध[1] के पानी, कुछ बात करें
कुछ ज़रा हिमानी से पूछें, पुन्न कुछ प्राप्त करें
ठहर सिंध के पानी, कुछ बात करें !

यह लो खड़ा बड़ा पर्वत जैसे कोई बनमानुस
उछल चढ़ा है ऊपर, बहुत ऊपर
इसके ऊपर लटका है छीजा छीजा सा
बादल का एक टुकड़ा,
जैसे गुच्छी[2] की एक लतर सरकती आई
फूटी दरार से बाहर,
सूरज डूबा जाने कब का
हुआ रंग श्यामल नभ का,
उधर चीड़ का बड़ा पेड़ जड़ से उखड़ा , लुढ़का है
जैसे बिजली ने डाली उखाड़ कोई फसील, ढहा दी
अभी चांदनी[3] आधी पायल ले बाज़ार बेचने चली।
पेड़ों के उस घने कुंज के अंदर, लगता है

* (मू0 क0–सें'दि वानि ठेंहर)

1. कश्मीर घाटी की एक स्थानीय नदी जो वितस्ता में जा गिरती है।

2. खुमी जाति का एक कुकुरमुत्ता, जो भू फोड़ कर निकलता है।

3. *कश्मीरी भाषा में 'चांद' स्त्री लिंग है। अनुवाद में इसे 'चांदनी' कहा गया है। चांद जैसे आधी पायल है।*

कोई सफेद बिल्ली ज्यों मिमियाती है,
टेढ़े मेढ़े चलती है यह धूसरित डगर
कल कल पानी का जैसे खामोशी सा,
अगले पैर–बंधा, भटका सा
कोई बेमालिक घोड़ा ,
टाप टुप टाप टुप
पहले चंदा को देख रहा
फिर रुक जाता,
अभी दिख रहा था
अभी गया किस ओर कहां ?
जम गई है उसकी नियमित चाल
थम गया तुम्हारा खुदा
आज रुँध गई मेरी सदा।
यह बात हिमानी से पूछें कुछ पुन्न पाएँ
ठहर ज़रा सिंधु के पानी, बतियाएँ।

(1965)

वह भी दिन था*

वह भी दिन था
जब किसी एक व्यक्ति ने दिया जलाया था,
स्नेह प्रेम का इस दीये में उसने डाला
लौ आग की खूब उठाई ऊपर, ऊपर............
जहाँ कहीं गुदड़ी फकीर था कोई बेबस निर्धन
चौंक पड़ा (उसे देख) वह वहीं अचानक,
अचरज में पड़ गए दरो दीवार
धीरे धीरे धीमे धीमे
गुप चुप चुप छिप कितने लोग चल पड़े
अधमुर्झाए चेहरे, अधमरे अरमान, अधपूरी आकाँक्षाएँ लेकर
जिस दीये की लौ ज्योतित थी,
उस पर बलिदान हुए कितने जागृत मन से।
खड़ा हो गया, धीरे धीरे फिर अजगर
सोया अजगर
दीये की अगन भड़कती गई

---

* (मू0 क0-: सु ति ओस दोहा)

1. *वितस्ता नदी*

भड़कती गई, जैसे बिजली चमकी हो,
हर दिल जैसे भट्ठी घायल
हर स्वप्न बना ज्यों नाच रहा अंगारा
आग का हो ज्यों मूसल
धनिकों की दुनिया (यह देख देख) हुई भौचक
घबराकर (यह देख) ढह गए राजमहल
तेज़ हो गई सांस दिये की, लाल हुई
आग हो गई सब दुनिया
आंखें जैसे खून भरे जलते दीये
लाखों दीये जलने लगे हर कहीं
त्रस्त हो गई दुनिया।

वह भी दिन था
जब हमने भी यहां इस ज्योति का देखा तेज
थोड़ा सा आया स्वयं हमारे आंगन में
बहुत दूर की एक आवाज़
जैसे मीठा रसभरा किसी निर्झर का रव
जब हमने देखा, तभी हमारा मन उफन पड़ा
हम अपनी टूटी सांसें लेकर निकल पड़े
हमने सोचा आँचल में हम इस नई रोशनी को समेट लें
और झोंपड़ियों में करें दीवाली
गूदड़ी संभाले अपनी
चावल खूब भरें, भर भर रखें, मटकियाँ भरें

रक्त हमारा गर्म हुआ
हमने अपनी साँस गरम की
जन्म दिया 'व्यथ'[1] को
हमने रक्षा की आस्था की
फिर क्या हुआ, हुआ सब कैसे
फिर जाने खुदा, हमारे कटे फटे कपड़ों में से
वसंत की ठंडी ओस निकल चली
जिसने पाई उसने उसको निचोड़ डाला
मन से इसका खुल कर निर्बाध उपभोग किया
हम वैसे ही रहे
जैसे थे,
जैसे जन्मे थे।

(1966)

वियतनाम

देखे मैंने आज,
        आज देखे इनसान
कितने हैं, हम कितने है?
भिन्न भिन्न हैं लेकिन भिन्न नहीं लगते
टहनी टहनी पर अंकुर ज्यों फूटे हैं
अनजाने भी इक दूजे को जानें खूब
सब की मनोकामनाएँ एक सरीखी
रूप सैकड़ों पर अनुहार एक सब के,

डल में हवा वंसती
मदमाती शबनम है लुटा रही मोती
कोयल की कू कू निशात की
एक दूसरे से शोभन, अच्छी
पर्वत पर हिम से उठती आभा
मन शुद्ध सरल मीठी भाषा
सीनों में है चंदन की सी शीतलता
तले चाम के खून चमकता है (सब के)

लाल खून है जैसे गरम गरम (है)
हर माथा है खान ज्योति का
वह (माथा) चाहे श्वेत , लाल या काला हो
मुस्काती मुद्रा, चाल मटकती है (सब की)
अपनों जैसी सब की ममता अपनों की
हैं भरे हुए मद के प्याले
आंखों का अपना सा बांकपना

वियतनाम अपना वियतनाम
यह जैसे हो वतन हमारा ही
पैग़ाम सचाई का मिस्र का
बस यही वतन हमारा हो जैसे

अफ्रीका, गुलाम नहीं होगा
मिट जाएगा टिड्डी दल मिट जाएगा
गाँव हमारा अँधियारे को सोख डालेगा
फूल खिलेंगे, खूब खिलेंगे

देखे मैंने आज भले मानस इनसान
कितने हम हैं, कितने हैं
मेरा ही तन है, मूलतः मैं ही हूं
सजा हुआ है (यह मेरा) संगीत बजा।

(1966)

आशंका[A]

(कालू सान्याल को भेंट)[B]

(समस्त संसार के शहीदों के नाम)

भाइयो, अब मेरा खुद पर बस नहीं
क्या पता कभी हाथ में पत्थर उठालूँ
और बिना देखे भाले मार दूं
और किसी के (रंग) महल की खिड़की का शीशा टूट जाए!
सौ कैंडल[1] की बत्ती पर लग जाए!
किसी के जालर–कंदील का रस्सा टूट जाए!
नींव हिल जाए किसी ' अंगुल –पर –खड़े– बंगले[2] की !
छत ही उड़ जाए किसी के दीवानखाने[3] की
कूंगरे (पर बने) तोते की नाक या कान टेढ़ा हो जाए!

A मू0 क0–खॅदिशि
B दिवंगत नक्सली नेता
1. सौ वाट अर्थात सौ कैंडल । मतलब अच्छी ज्योतिर्मान और गर्म।
2. मुहावरा है। महत्वाकांक्षी यद्यपि बेबुनियाद।
3. ऊंचे वर्ग के घर की बड़ी बैठक

पत्थर गुब्बारे के सीने पर सीधा लग जाए
खट –से कोई मोतियों का हार टूट गिरे
(किसी की) मोटर कार पिचक जाए
किसी मूर्ति का ताज गिर ही जाए
(किसी का) श्रृंगार–दर्पण घायल हो जाए
आधी खोपड़ी पर रखा कराकुली[1] का टोप कोई गिर पड़े।

किसी का सूट–बूट छू–छिल जाए
(पत्थर) किसी पत्थर की मूरत के ऊपर जाए
किसी दालान के दरवाज़े के ऊपर उड़ता जाए
'कलश'[2] किसी आस्ताने का ज़ख़्मी हो जाए
सब सोचें अनुचित, ऐब, शरम (की बात है यह)
(और कहें कि) पगला यह 'मनसूर' सा कोई बौरा
बुद्धू, मूरख, सिरफिरा कोई ही तो,(यह होग)
चलो कोई बात नहीं, पर आप का जी यों ही खराब होगा
देखो भाई इस के बस में नहीं
बस यों ही नासमझ ने हमको शर्मिंदा किया।

(1967)

1. 'करा कुली' जाति की बकरी की खाल से बनी कीमती टोपी।
2. कलश जैसा कँगूरा जो इसलामी धर्मभवन (अस्ताने) की चोटी पर होता है।

सॉनेट[1]

एक दिवस पहाड़ के पीछे उगा चांद रोटी सा।
गले लटकती चिथड़ी तनियाँ खुली छोड़कर
रुपहरी त्वचा पर लगे दाग़ खोले, उघाड़ कर
फुटी पुरानी तार तार सी पाँपूरी लोई[2] जैसा।

चाँद उगा रोटी जैसा, थका हुआ धुँधला सा।
जैसे किसी मजूरन (बेबस) से छल कर
ठेकेदार थमा दे (थोड़ासा) फुटकर
और फुटकर के साथ रुपैये का सिक्का एक खोटा।

चांद उगा रोटी सा, भूख पर्वतों की भड़की
लगा बुझाने (नभ की) भट्ठी फिर बादल
जंगल की अप्सरियों ने जैसे चूल्हे को सुलगाया।।

पर्वतमाला पर भात के पेड़ों की ज्यों पाँत उगी
लगा बोलने मैं कि हूँ बहुत भूख से विह्वल
विस्फारित आँखों से मैंने बार बार नभ को देखा।।

---

1. इस सॉनेट की तुक योजना मूल की तरह ही रखी गई है– क ख ख क क ख ख क ग घ ङ ग घ ङ

2 पापुर (श्रीनगर से 12 कि0 मी0 दक्षिण का एक कस्बा) में बनी प्रसिद्ध ऊनी चादर

समझौता[1]

ये पेड़ पौधे
घास, दूब, झाड़
ये ईंटें और सीमेंट
खिड़कियाँ, छतें–
मिट्टी का मनुष्य जैसे पुआल के ढेर से, जन्मा–
यह बँगलों की कतार है
वो उधर जँगला बंधा है
यह सब जैसे मुझी से लिपट (कर मुझे कस) रहा है
और मेरे अंग अंग को पिरा रहा है
मेरे हाड़, मांस, रक्त में धँस रहा है।
वास्तव में भीतर से खोखला हूँ
ठीकरों का भुरभुरा रनाव[2]
मोमी कागज़ का नश्वर फानूस, साबुन का झाग
और इसी में एक दुनिया समाई है
अंधियारी गुफा के अंदर खड्ड
जिसमें आजतक लाखों चेहरे खो गए

---

1. (मू0 क0 –समजूत)

2. जो टिकाऊ नही हो (कहावत)

जिसने आज तक भागते काल को भी निगल डाला
वे अनगिनत क्षण

सैकड़ों विकार
सुख दुख सहज–सुभाव
घृणा, ममता, ईर्ष्या
प्यार, मिठास, छोटापन, कड़वाहट
खिलता शैशव, मदमस्त जोबन।
'अब(जला भुना) इस पर चाहो तो रेत भी भूँजो"
जैसे कभी कुछ था ही नहीं
कभी कोई नहीं था।
छोड़ो जी
कोई धुन छेड़ो
उतना ही काफी है।

(1967)

---

1. हरियाली रहित । निष्फल। बदकिस्मत । (मुहावरा)

मक्खियाँ*

इस सड़क की किस्मत में अनिद्रा है
रात रात घिसती है, मोटरों की दौड़ इस पर है
चिकने माथे वाली जो हैं, उन्हीं की चलती है
(उन्हीं की यह दुनिया है)
सुबह जाकर कहीं एक झपकी लेती
पर टूटे चूतड़ वाला कुत्ता ऊं ऊं करने लगा
इसे नींद से जागना पड़ा
आंखे मलते हुए इसने अंगों को ताना
भंगी अभी (इस सड़क का) मुंह पोंछ पांछ के गया

सेक्रिटैरिएट के दरवाज़े ने अँगड़ाई ली
इसके जबड़े हिले
अब शायद यह मुंह बंद नहीं कर सकती
अभी इस के मुँह में हज़ारों मक्खियाँ घुस पड़ेंगी
फिर पेट में समा जाएँगी
पिछले मसूड़ों में जान आएगी
हज़ार मक्खियाँ फिर बाहर निकलेंगी
और सड़क (फिर) गुमसुम हो जाएगी
फिर रात के लिए जुट जाएगी
मक्खियाँ रात को मोटर कारों में घूमने फिरने
लग जाएँगी।

---

*(मू0 क0–मछि)

आने वालों के प्रति[1]

ठहरिए ठहरिए
नहीं कीजिए उतावली, ठहरिए
अभी भी कहीं कहीं काली घटा घेर रही आकाश
सुबह जगह जगह ठंड बाँट रही है
वनपवन छायाओं के गिर्द घूमता
कदम बढ़ाता
धीरे धीरे तड़प तड़प कर ओस दम तोड़ रही हैं
राजनीति अभी भी षडयंत्रों को
सुलझाती (स्वांग करती) है
अभी भी कमल के फूलों को गठरियाँ में बाँध के
दर दर भटकाया जाता है
सिर के बल लटकाया जाता है
अभी भी फूलों के फफोले फूट रहे हैं
अभी भी उमंग मरुस्थलों में खो रही है
अभी भी प्यार और सुंदरता का क़द मापा जाता है
और उस की माप क्या है?
अभी भी कहीं कहीं उद्यान सुलग रहे हैं
आओ

1.(मू०क०–यिन् वाल्यन कुन)

ठहरो ठहरो
सुस्ता कर जाओ
शायद समय टले तो आसमान का रंग भी बदले
शायद
शायद
नहीं कीजिए इतनी उतावली
आपको आना है तो आ जाओ
जब धूप निखरती है
जब वसंत आता है
जब सुबह होती है
जब.................. ....
मैं भी आया था, मेरे जैसे कई थे,
हम ले गए (बेमाँगी अप्रत्याशित दौलत)
आओ तुम भी,(तुम भी लूटो)
रह न जाओ तुम!

(1969)

जंगल

जंगल जंगल
सहसा मुझे लगा सिलवटें पड़ीं हवा में
चीड़ों की सुइयों की "सन सन सी, सीं–सीं" सुनली
तभी अचानक जग गए सब तार–
"आओ रे!.......... आओ आओ रे!!"

फूटा सोता "नाग बल" का
झर्र झर्र –झर्रार
और "तेलबल" के ऊपर बह चली बयार
साँय साँय सू..............सि................हू........
"आओ रे! आओ आओ रे!!"
जैसे मैं ने पूछा हो– बुला रहा यह कौन है रे ?
कहां मुझे जाना होगा ?
गा उठीं बुलबुलें –पिच पिच चूं...............पिच चूं
मैं भी जैसे बोला, चुक गया पिच पिच चूं मेरा तो,
चौंका गया पूछ कर क्यों रे स्वाँगी, कांपने लगे थर थर ?

जैसे मैं ने कहा जरा शौक पूरा करने दो

उसने कहा तेरे सामने ही तेरी मंज़िल है

जैसे मैंने पूछा—लेकिन मार्ग कौन दर्शाएगा

गा उठा जवाब में —टिन टिन

टिन–टिन (करता काफ़िला बढ़ जाएगा)।

"आओ रे !! आओ, आओ रे !!"

(1971)

आज लगी फिर हांक*

तारे मंडी चले, कोई राज़ बेचना चाहें
रहस्यों भरा है
नहीं गले लोगों के उतरने वाला
अंधियारे और गुफा के बीच, क्या षड़यंत्र हुआ यह
कोलाहल के बीच
खामोशी ने राह निकाली
छोटी उम्र फूलों की : घड़ी भर सुबह की
आकाश का एक क्षण भी होता है
एक प्रकाश वर्ष
नहीं तो, नभ का तारा कोई लघुआयु,
पलकों की एक उठान पाएगी युग का विस्तार
समय हमारा, मुंह में कपड़ा ठूंस
चुप बैठा है
पर कबूतरों का पेट पचा सकता क्या लौहचूर ?
कानों की बालियाँ तोड़ दी गईं
तेज़ाब में गला दी गईं
श्वास–नल्लिका में पिघली रेत भर गई
मैदानों की रेत में खिले, खून में लिथड़े फूल

---

* *(मू0 क0– बे'यि लॅज हख)*
अरब धर्मयोद्धाओं (मुजाहिदों) के .:म

नमरूद[1] की ऐंठ, फिरऊन[2] का अहम

आज लगा फिर हांका यूसुफ बिक रहा है

है कोई खरीदने वाला? फिर बेचना है तो बेचो

आज लगी फिर हांक– बिक रहा है यूसुफ

रक्तिम आंखों ने दीवाली पुनः शुरू की

हुआ क्रोध का चेहरा फिर अंगारा है

इस अधजाई दुनिया में

टूटती नहीं आग की लपटें

उधर बुझा लेते इनको हम

देकर चाहे बलिदान

इधर मगर नमरूद इसे

भड़काते हैं और

रक्तिम आंखों ने दीवाली

पुनः शुरू की

गुस्से का मुख फिर अंगारा

लाल हुआ है

नमरूद की ऐंठ, फिरऊन का अहम

ये तो कुछ क्षण हैं

कुछ मानव–क्षण

अभी हैं और अभी जैसे कभी न थे

पर प्रकाश वर्ष कभी चुक जाता है?

चलती है जिंदगी कभी पैर थाम कर

रुक रुक कर ?

(1971)

---

1. नमरूद ने स्वयं को खुदा घोषित किया था।
2. फिरऊन, मिश्र का अंहकारी बादशाह था।

आओ बात करें[1]

आओ बैठो इधर ज़रा हम बात करें
थके हुए हो तुम भी मैं भी थका हुआ
अंतहीन कोसों तुम चल आए मैं भी चल आया
आज करें फिर याद क्या था करा धरा
होने दो लंबी रात! आज उनींदी रात करें
आओ बैठो इधर ज़रा हम बात करें।

झुँझलाया है आज हृदय अनखाता है
जाने कहा हमारे शेरों[2] ने कब क्या है
चलो दुबारा बचपन की शतरंज बिछाएं खेलें
शह दें एक दूसरे को और मात करें
आओ बैठो इधर ज़रा हम बात करें।

फिर आया वसंत कि डल की ओर चलें
देखो उधर ढाल पर ढेरों फूल खिलें

1.(मू0 क0—कथ बाथ करव)
2. शेर= गजल का शेर

सेतु–बांध पर चलें ; या नीचे दामन में घूमें
फुर्सत से, शुभ वेला तय करने की बात करें
आओ बैठो इधरा ज़रा हम बात करें।

जननी छायाएं भी तो अभी प्रूसता दिखतीं कहीं कहीं
यहां वहां जल्दी जल्दी ताना बुनती सी दौड़ रहीं
ऊपर है आकाश खुला जैसे फैला मखमल मखमल
चलों चलें आस्ताना ('तीरथ') पुन्न कोई तो प्राप्त करें
आओ बैठो इधर ज़रा हम (एक घड़ी) तो बात करें।

(1971)

मुनाजात[1]

लंबा चौड़ा है यह बीहड़, निर्जन सहरा
आशा केवल नाम आपका, नाम आपका।

बस पानी, जीने का केवल एक सहारा,
और शौक[2] निश्चिंत, मगर है बे परवा

प्रेम बली है बड़ा वीर, दिलेर है
और मिलन शमशेर है, शमशेर है

नियति मेरी गिनती छोटी है, बे पैवंद[3]
तेरी यही चाहत है तो हम रज़ामंद[4]

रक्त जड़े मोतियों सा, यह सहरा
ज्योति–आशा है नाम आपका, नाम आपका

(1971)

---

1. अरबी परंपरा में अल्लाह के प्रति भक्ति निवेदन
2. उमंग, जीने और प्यार करने की ललक
3. बेसहारा (मूल का शब्द)
4. संतुष्ट, प्रसन्न, सहमत

रोग*

हल्का, हल्का, हल्का ही
ऐसा ही है यह रोग

इस पीड़ा का है आदि नहीं कुछ अंत नहीं
मौसम हो गर्मी का या पतझड़ का, शीतकाल हो या वसंत
इस पीड़ा का नहीं आदि है नहीं अंत

बिच्छू की एक डसन
कंधों में ठुकी एक कील
बस क्षण में घुट, चुक जाए साँस
प्राणों में खिंचाव कँपकँपी अंग अंग में,
माँस विलगता लगता, पारा नस नसमें जमता
देह पसीने में लथपथ
ज्यों बसंत में टूटी खपच्चियों में चोंच छुपाए पंछी
व्याकुल तड़पे हृदय
इस पीड़ा का है नहीं आदि या अंत

*. (मू० क०-दोद)

ऐसा है यह रोग

हल्का हल्का और हल्का

है नही अंत इस पीड़ा का

इस पर्वत का सीना कितना उभरा उभरा

युग युग से दर्द आदमी का इसमें भरा भरा

रग को रग से मिला रहा

(बस,चुप) देखते रहना है, देखकर सहना है

देखते रहना सहना सहना है

यही चाल अब अपनाई है इस युग ने

रस्तों में रक्तिम फूलों की है पांत लगी

यह अलग किस्म की पीड़ा है

इस पीड़ा का है आदि न अंत

हल्का हल्के से भी हल्का

ऐसा है यह रोग

इस रोग का कोई, आदि नहीं कुछ अंत नहीं

जंगल है घना, ह्रदय धड़क रहा है उछल रहा

इस जंगल में दूर दूर तक, कोई जन झाड़ी झंखाड़ नहीं दिखे

बस एक दरक बाकी जिसमें

रोशनी जन्म ले रही, तुतलाती।

अँधियारा बस अँधियारा

कोसता ज्योति को
छेद, दमकते हैं अतीत के
वर्तमान में इनसें फूटे शोर सिर्फ
ऊपर नीचे वर्तमान जादू में सब जकड़ गया
लेकिन यह रोग अलग सा है
इसे भांपते मुझको होती भ्रांति
(लगता) अँधियारे में कस्तूरी जलती है
इस रोग का कोई आदि नहीं अंत नहीं
ऐसा ही कुछ है यह रोग
हल्का हल्का, धीमा धीमा
इस रोग का कोई आदि नहीं अंत नहीं
ऐसा ही है यह रोग।

(1974)

सावधान हो*

सावधान हो जी, सावधान!
जी, देखो फिर आज हमारे आस पास में जमा कर रहे वो ख़रीद कर आग
जी, फिर अन्न धान के कोठारों में हमसाये हैं जमा करें हथियार
जी, बदनीयत भाग आए इस पार, लगाकर शोरे[1] के अंबार
जी, वही पुराने दूत मौत के लगे भेजने हैं बमबार[2]
जी, जोबन के मातों का, उनकी मासूम ठवन[3] का, फिर न लगे व्यापार,
जी, नीलाम चढ़ेगी क्या चाहत बलिदान की?
और फांसी का तख़्ता मांगता रहे खून?
अमनपसंद प्रिय मेरे भाइयो रे रखना तुम ध्यान
मुर्झा जाए नही कमल का फूल कहीं
सावधान हे होशियार, जी होश करो!

(1972)

★ (मू० क०– हे होश कॅरिव)

1. शोरा = फटने और भरसक जल जाने वाला मादा, बारूद

2. बमबार = बम बरसाने वाले (जहाज़)

3. ठवन = ठसक, मुद्रा, चाल

आशा[1]

खिलखिला उठी खुशबू महकी हर दिशा दिशा
बस फूल फूल हर रस्ता था

यहां मुझे है, मुझको भी है, मुझको है आशा
पर्वत की चोटी पर जन्मी अभी, रोशनी की
रेतीली परती में उमड़े हुए प्रकाश की
स्मृति सैकड़ों सदियों की फिर जाग गई

हवा चली या चढ़ी खुमारी प्यार की
फूल खिले या खिली रोशनी भोर की
व्याकुल हुआ हृदय कि प्रेम संगीत बना
बाहर निकली किरण कि छवि का राग सजा
फूल खिला या प्रातः की रोशनी खिली
हवा चली या चढ़ी खुमारी प्यार की

मन चंचल हुआ, यों कहो उछाह संगीत बना

1.(मू० क०–आश)

शबनम जन्मी यों कहों मन का भेदी जन्मा
अभिमान रात का चूर हुआ
अंधियारे को झपकी आई और साँस रुकी
रात ने तोड़ी हद , मद उसका टूट गया
अँधियारे की आँख मुँदी और साँस रुकी

सुबह की किरण तारों के ऊपर गुज़री
पाँव किरण के पड़े तो लालिम राग जगा
रेगिस्तान में शेषनाग (सरोवर) ने जन्म लिया।

आँधी[1]

आंधी के पांव भारी थे
चली, शू. शू. शू.
जगह जगह अपना पता छोड़े जा रही थी–
चमचमाते धौले, रेत के ज़र्रे
तह दर तह,
पीढ़ी दर पीढ़ी,
जोड़कर, जुगाड़ कर, सजा सँवार कर ।
कहीं कोई पंगडंडी नज़र आ रही है?
पीछे देखो
कहां रहे वे ठोर ठिकाने
नक्श – निशाने,
पीछे देखो
कहीं कोई कुछ दिखता है?
समय का ऊहापोह (जहां से गुज़रा)
सब कुछ मेटता चला
देखो पीछे बीहड़ है

1.(मू0 क0–छ0)

देखो आगे है मरुस्थल
और धुंध भी
गहरे तल से ज्यों धुँआ फूटता।
तन रे, मेरे मन रे, सिमट गए हो,
तो सिमटते जाओ
और सिमटो
सिमटो सिमटो सिमटो सिमटो
सिमट जाओ इतना कि राई का दाना भर रह जाओ,
तेरा पिघलना (झड़ जाना)
उड़ेगा, शून्य में चढ़ेगा, पर तुझे मिलेगी मुक्ति ?
नहीं तो करो इंतज़ार
(अब तक) इंतज़ार का मन नहीं किया ना
फेंक दे यह बोझा
कितना बढ़ाया है कचरा–खचरा
चिथड़ा–फकीर लगते, जैसे लटकन –झटकन वाले पागल,
अधजली सी व्यर्थ गई उम्र तेरी
लज्जित है धूप
फक पड़ा है रंग
नदी का पानी कब का छीज चुका
नदी रास्ता भर रह गई है
है कोई अतापता, कोई निशां या नक्श,
जिससे कोई तुम्हें पहचाने,

तुझे इंतजार करना है
कर
वक्त की आंधी चल रही है
यह तुम्हें ज़मीन में अभी गाड़ देगी
कुछ देर बाद तुम्हारे नाम का पत्थर गाड़ा जाएगा,
और उसके बाद कौन, क्या ?
बस तह पर तह
पीढ़ी पर पीढ़ी
फिर तह दर तह।

ग्रहण[1]

अभी अभी अचानक
शून्य की वह एक आंख
पूरी की पूरी घायल हो गई
सुन्न हो गया, सब कुछ सकते में आया
नज़रों के बाल बट गए, उलझते गए,
संपन्न हो गयी और, अंधियारे की विराटता

2

फुसफुसाहट
ज़मीं पर, पानी की जमी तह पर
फिसलती चली
लगे हाथों, राहों में
'ऊँह ऊँह' साथ लेती चली
चतुर्युग से चतुर्युग तक
समयों, प्रहरों, मन्वंतरों, पलों की 'ऊँह ऊँह'
घुप धुँए में खो गई
अब कहां नज़र आएगी?

1.(मू0 क0–ग्रुहुन)

3

जमावड़े, जमघटे ही जमघटे
छायाओं का ताना बाना बुन रहे हैं—
घने पेड़ों के इर्द गिर्द,
गहन वन का आभास करा रहे हैं,
लक्ष्मण रेखा पर पैर नहीं रखना
वरना जटायु अंधेरे में कहां चीन्ह पाएगा—
गहनों का सोहन आकार?
और इस पथ पर
राम का पारद हृदय कैसे चैन पाएगा?
लुढ़कते गए, अंधकोष्ठ उघड़ते गए
        छायाएँ बेरोक झुंड़ों में निकलने लगीं
        लगातार हर तरफ घूमने लगीं
अभी यहां तो अभी यहां
अभी मंडलाकार जोड़ियाँ बनाकर
रेशम सी चिकनी, हाथों से फिसल गईं
जैसे बिल्ली की दुम लोमड़ी के हाथों में आई हो
यह पकड़ी और यह छूट गई
जैसे आंखें चार हुई हों एक निमेष भर
चुक रहे, बुझ रहे हों जैसे
        अनहुए हो रहे बचपन के दिन।
जर्जर छाया एक
यह मेरा शरीर है, यहीं मैं हूं। **(1973)**

आज का दिन भी वैसा ही[1]

वैसा ही है आज का दिन भी
मेरा रक्त चूसकर बुझ गई हो जैसे
चिंगारी
वैसा ही है आज का दिन भी,
विश्वास खोकर
डूब उतर रही हो तिरछी नज़र सूरज की
वैसा ही है आज का दिन भी,
अंग तान कर पड़ी हुई है राह
गया काम से जैसे हो बाज़ार
आज का दिन भी वैसा ही है,
पूर्व काल की स्मृतियाँ दोहरा रहा जैसे
मरते दम कोई मूर्तिकार
वैसा ही है आज का दिन भी,
जैसे धुंध ओढ़कर अचेत पड़ी है
पहाड़ी के दामन में झील कोई
वैसा ही है आज का दिन भी,

---

1 मूल क0—अज़ दो'ह ति त्युथुय)

किसी अकेली पछताती शाम
खड्ड के किनारे खड़ा जादूगर हो गुमसुम
आज का दिन भी वैसा ही है,
जी करता है इस दिन का मुँह नोचूँ–
जब इसकी सुबहें: शामें शिथिल पड़ेंगी, चली जांएगी
यह दिन ऐसा ही नही रहेगा
मैं समय को पलट दूँगा
यदि तेज़ कदमों से चले
फट फट फर फर
फिर इसकी अकड़न सीधी कर लूँगा।

(1974)

नुंद ऋषि रे[1]

तेरे शांत स्वभाव को शुद्ध मन से पूजूँ
नुँद ऋषि, तेरे नाम करूँ मैं श्रद्धा फूल समर्पण
उजले मन से तेरे तेजमय कश्मीरी रूप को,
नुँद ऋषि, तेरे नाम करूँ मैं श्रद्धा फूल समर्पण।

अभिलााषाएँ रौंदी गई यहाँ पैरों के तले कितनी
यहां फूल कितने तूफानों के कारण छितर गए
यहां वितस्ता ने झेली आंधियाँ नग्न बदन पर
नुँद ऋषि , तेरे नाम करूँ मैं श्रद्धा फूल समर्पण।

कश्मीरी ही भाषा हो और कश्मीरी आकाँक्षा
स्वाभिमान, गर्व आप के कारण इन में आता
नहीं अगर ऐसा होता खो जांते मरु में दोनों
नुँद ऋषि, तेरे नाम करूँ मैं श्रद्धा फूल समर्पण।

1.(मु० क०– नुंद् रे'शि!)

उस महिला[1] ने सोचा शिशु[2] का मन सुगंधित कर दूँ
उसने इसे घूँट घूँट भर नवचेतना पिलाई
खुशबू वही कदम कदम पर आज बिछाए पवन
नुँद ऋषि तेरे नाम करूँ मैं श्रद्धा फूल समर्पण।

कश्मीरी 'नादिम' ने संदेशा भेजा
पंछी से और पवन से
तुम सुन लेना जी जैसे भी , बिनती उसकी मन से
फिर चाहे उसे चिढ़ाएँ उसके अपने कश्मीरी जन
नुँद ऋषि तेरे नाम करूँ मैं श्रद्धा फूल समर्पण।

(1974)

---

1. ललेश्वरी, जिसने घुमते फिरते, एक दिन शिशु नुँद को छाती का दुध पिलाया था ।
2. शिशु= नुँद ऋषि (शेख नूरुददीन, प्रसिदध सूफी संत)

सुबह सुबह

सुबह सुबह हवा चली धीरे धीरे
क्रिच–क्रीच–क्रीच हल्के हल्के पल्ला खिड़की का खुला
यों ही खुला कि मैंने झांका
कबकी हो चुकी रोशनी, दिन बहुत निकल आया
पेड़ों की फुनगी फुनगी पर धूप मल चुकी थी सोना
पत्तों के आंचल ओसों के मुक्ताहल से भरे हुए थे
दिवालोक सूरज फूलों का मोल बढ़ाता चला जा रहा नदी किनारे
लता के इर्द गिर्द तितलियां थीं व्यस्त संवादों में
धुंधों के झुरमुट कहीं कहीं
कहीं घनेरे पेड़ों में हांफ रहा था अभी रात का समां,
यों देखें तो क्या कम है इस फुलवारी में
जिस दिन से यह हुई हमारी, बढ़ी उमिरिया ही इसकी
प्यार हमारा बढ़ा दुलार बढ़ा
लेकिन फिर भी खटके कोई कमी अभी
फुलवारी होती न सिर्फ कुछ कलियाँ या कुछ फूल

1.(मू0 क0 – सरि सुबहॉय)

फुलवारी होती है शुद्ध वसंती हवा
फुलवारी है नहीं निरा निर्झर झर झर संगीत
फुलवारी फव्वारों का भी मदमाता फुत्कार नहीं
फुलवारी है नहीं झूमता तना "सरू" का पेड़
फुलवारी है नहीं मात्र फूलों का रंगभरा उल्लास
फुलवारी है नहीं क्यारियों की केवल बदिश
फुलवारी है नहीं धारा मंथर मंथर बहती
फुलवारी है नहीं जमीं में फूटी नव हरियाली
फुलवारी है नहीं रोशनी उदयान्चल से उतरी

फुलवारी है आस्था पेड़ों की शीतल छाया पर
फुलवारी है विश्वास उड़ रहे पाखी पर।

(1975)

हुसैन[1]

दृढ़ संकल्प, पुख्ता यकीन, हीरक जोबन, प्यार की बौराई, (था वह) पथदर्शक, पथ का साथी बस नाम खुदा का था जो फैलादी, वो नजर (थी उसकी) जो राह दिखाए, और जिस विश्वास ने रेगिस्तान को जगा दिया। आज वह विश्वास अंकुरित हुआ है हृदय में एक भड़कता, उबलता, धू धू कर जलता संगीत है, उत्साह का एक भाव मय काफिला आगे बढ़ रहा है। यह प्रेम है इसे कोई भय कोई डर नहीं। इस में गिनती का कोई महत्व नहीं कि कितने इस काफिले का साथ देते हैं। न यह गम है कि सफर अभी और कितना लंबा है। भला ऐसे विशेष खून को क्या कहा जा सकता है ? यह ईमान तो हीरे जवाहर की तरह चमकता है। ये घाव घाव नहीं बल्कि यह वसंत हँस रहा है। यह तो अमृत सागर में फूलों के बुलबले फूट आए हैं। यहाँ के बोल ऐसे हैं, जो छाती के अंदर प्यार की अगन बनते हैं। यहां तो अपने हृदय का रक्त खुद पीकर ही प्यास बुझाई जाती है। इनका संकल्प है, जो अंगारे की तरह, दमक रहा है, जिसके सामने फुरात[2] नदी की लहरें शरमा जाती हैं। हुसैन सत्यके इस रास्ते पर शुद्ध और सादा जुनून, लेकर तथा सत्य की आस्था लिए निश्शंक चला। इस रास्ते का रक्षक प्रभु है और इस राह पर चलने वाले का उद्धार कर्ता है– हुसैन।

---

1. प्रसिद्ध धर्मगुरु। पैंगबंर मुहम्मद के संबंधी जिन्होंने यजीद के अन्याय के सामने घुटने न टेक कर शत्रुता मोल ली और सत्य के लिए बलिदान हुए।

2. इराक की एक नदी, जिसके किनारे प्यासे हुसैन सपरिवार मौत के घाट उतारे गए।

आवाज़ों के अर्थ[1]

रबाब रखा गया सामने मेरे
बड़े प्यार से, मैंने, गौर से देखा
अचानक उसके तार जाग पड़े
सुर और ताल ने धीरे धीरे गुनगुनाना शुरू किया
एक मीठा 'वचन'[2] हौले हौले......
आओ रे...............आ जाओ रे.........
सोता उबल पड़ा हो जैसे झरर झर्र
'तेलबल'[3] के ऊपर चली हवा हो जैसे ....शू शू सर्र
आओ रे.........आओ रे..............

मैंने उससे पूछा–कहाँ से बुलावा आया है मुझको, कहाँ रे ?
वह गा उठा– चिहूँ चिहूँ पिच पिच बुलबुल की रे!
मैं बोला– पिच पिच अब कैसे उचार सकूँगा?
उसने गाया– थर थर थर सिहर रहे हो, स्वाँगी रे!
आओ रे............आ जाओ रे...........
मैंने कहा– साँस थक गई है रे अब तो मेरे उछाह की
गा उठा – सामने रही सामने वो तेरी मंज़िल रे!
मैंने कहा– करूँ क्या राह नहीं सूझे कोई, प्यार की
गाने लगा –टन टन टन (चला जा रहा) काफ़िला रे
आओ रे ....आ जाओ रे...............

(1976)

---

1. मू0 क0–आवाज़न (हुंध) माने
2. वचन – कश्मीरी गीत–काव्य की मुख्य विधा।
3. तेलबल –झील डर के उत्तरी किनारे का एक सुंदर जल स्त्रोत।

तीन नज़्में*

(एक) बचपन–

जब से जन्मा तब से अपनी वैसी ही छायामें (मुझे दिख रहा)
वो मेरा कभी कभी हँसना, या कभी कभी घबराना
हो रोशनी तो लेना राहत की सांस, अंग तानना
अंधियारे की लेनी टोह प्रेतछाया सा सिमट जाना
उछल कूद वो उठा पटक मन जैसे हो पारद
जंगल के 'हाँगुल'[1] सा आना जाना
भूख प्यास सब जाना भूल, बढ़ी भूख को कम बतलाना
तीते पर नाक भौं सिकोड़ना, मीठा रुचि से लेना
सारी दुनिया, एक मानना
हर बात पर निश्छल विश्वास
"वही मुझे (लल को) था मिला वचन –संदेश
और नाचने लगी तभी से मैं निर्वेष[2]

★.(मू0 क0–त्रे' नज़्म)
ये तीन कविताएँ कश्मीरी कवयित्री ललेश्वरी के तीन 'वाकों' (पदों) की दो दो पंक्तियों पर खत्म होती है और भावानुसार उन्हीं के आधार पर लिखी गई हैं।

1. *हांगुल – हिरन जाति का वन्यपशु। सीधा, अनजान।*
2. *निर्वेष – नग्न – गुरु वचन मिलने पर उन्माद की सी स्थिति में स्वच्छंद क्रिया कलाप हो गया ।*

(दो)–**जोबन**–

बड़ी कामनाएँ ले कर मैं चली घूमने
भेद–अभेद के संस्कार साथ लेकर मैके से
पगडंडियाँ बाग में आकर जगह जगह जब खोईं
मैं अजान थी क्या जानूँ इसका अर्थ भला
जोबन के फूलों का पराग, लुटाती मैं घूमी
तन धोया, मन के पावन सिंधु–जल से
सुबह हुई तो मुस्का कर हल्के हल्के
'सन्य' फूल ने अर्थ किया मेरी बातों का।
इतने में मेरे उछाह के दिन पूरे होने लगे
रुँध गया रास्ता मेरा, फिर मैं कैसे रहती पहली जैसी
"लकड़ी की कमान हो गई, हुआ घास का बाण
अधसीखा बढ़ई मिला, क्योंकर उठे मकान"![1]

---

1 असफलता और व्यर्थता का बोध हो गया।

(तीन)–बुढ़ापा

कनपट्टियों के बाल हुए जर्जर
मेरे वंसत का रंग पडा फीका
रूप भी तो नहीं रहा, तेज खो गया
मेरी सारी दुनिया रंगों के छीटों से पुती हुई थी
उस को पाला मार गया
अब कहां वो उड़ान भरना, नाप लेना नभ को
अब तो सिर्फ गुफाएँ निर्जन देख रहा हूँ
कहां पहाड़ी नदियों पर वो पड़ने वाली ढेरों धूप
अब यह जाने किस सर से ठंड फूट आई ?
तब हर ओर हुआ करता शोभा का जैसे वर्षण
आज खोज खोजकर भी कहीं न होते दर्शन।

खींच रही हूं मैं नैया कच्चे धागे से[1]
काश कि सुनें ईश, मुझे भी पार कराएँ।

(1976)

---

1. प्रयत्न और उपक्रम दोनों अधकचरे हैं।

हम थीं बहनें सात[B]

आह भरना चाही उसने अनायास
पर रोकी
फिर भी हिचकियाँ लगीं उसको
क्या हुआ री ? क्या हुआ भला?
बोली – जीजी री, 'बुध'[1] बहना ,
मेरी तो हुई नाम बदली[2]
किस नाम की री ?
'मंगलवार' नाम की
आसूं रोको, ज़रा साँस लो
चलो आज तुम्हें ले चलती हूं मैं अपने साथ
वो देखो आज जा रही 'च्रार'[3]
'च्रार बृहस्पतवार' को
प्रिय नुंद राजा[4] के हाँ
देखो जुम्मा लाला[5] देख रहा है लाड़ से
ले जाएगा संग अपने, दरगाह[6]

नूर[7] खिलेगा मुख पर, मन शीतल होगा
मार्ग दिखाएगी अपनी प्यारी जीजी
अपनी ही शनिवार[8]

B (मू0 क0– ॲस्य आस् सथ बे'नि)

फिर जल्दी जन्दी हारी पर्वत[9] पहुँच जाना
तहरी की थाली लेकर
रस्ते के कंकड़ पत्थर देंगे असीस
संदेस खबरिया पूछेगी इतवार[10]
डल[11] की सैर पे जाने का न्यौता देगी
कमल फूल खिल आंएगे
दुख दर्द मिटेंगे शिकवे भी, मन तेरा निर्मल होगा
शाप सभी मिट जाएंगे
तेरे रास्ते में बाएँ होगा चांद[12]
चंद्रकला[13] पाओगी दुख दर्द मिटेंगे तेरे
यों फिर पहुँचोगी सत्यनाम के निकट
यो पहुँचोगी मूल के निकट अपने
होगा फिर मंगल, मंगल ही मंगल होगा।

(1974)

---

1. बुधवार (इस कविता में सप्ताह के सात दिनों को सात बहनें माना गया है।'वार' कश्मीर में स्त्रीलिंग है)

2. एक विश्वास। (कोई व्यक्ति मर कर पुनजीर्वित हो जाता है, क्योंकि यमदूत नाम साम्य के कारण उसे असमय उठा ले गया होगा।)

3. श्रीनगर से 30 कि0 मी0 दूरी पर शेख नूरुद्दीन (नुंद ऋषि) की समाधि का गांव, प्रसिद्ध आस्ताना। चरार में बृहस्पति को मेला लगता है।

4. नुंद ऋषि

5, 6. जुम्मा, शुक्रवार को दरगाह (हज़रतबल) में सामूहिक नमाज़ और मेला होता है। ' जुम्मा' किसी का नाम भी होता है।

7. प्रकाश, दैवी ज्योति

8. 'वार' स्त्रीलिंग है

9. श्रीनगर के बीच में स्थित पहाड़ी पर हारी (सारिका) देवी का मंदिर है जहां तहरी (पीले चावल) और मांस चढ़ता है।

10. इतवार एक और बहन है

11 झील डल

12. कश्मीरी में सोमवार को चंद्रवार कहा जाता है। बांए का चांद यात्रा में शुभ मानते हैं।

13. चंद्रकला– साधना में शीष पर स्थित शशिकला को प्राप्त कर उसे तपोबल से विगलित करने तथा सिद्धि पाने का उल्लेख कश्मीरी शैव परंपरा का अंग है।

मदर टेरिसा[1]

शुद्ध धूप है, गुलाब की शांत शीतल ऊष्मा है यह, मुस्करा लो,
आकाश है निरभ्र स्वर्ग से किरणें उतर रही हैं
हाथी दांत की एक पौढ़ी है यह,चढ़ लो
उजली रेशम है, रसीली आवाज़ है, होठों का माधुर्य है, जी लो
स्पष्ट प्रकाश है, वस्त्र फकीरों–से इसके
ज्योति के हैं पुंज, बस लो
स्नेह मेरी नस नस में बस गया
मनसर में कमल खिले
हृदय उदार हुआ मेरा, उभरी उसमें
मौन होकर वह ज्योति–'वाक' बोलने लगी
मां की ममता की भूख मिटी मेरी
बहुत दिनों के बाद
खुला सूर्य
खुले निरभ्र सूर्य की एक किरण
श्वेत वसन पहने
गोदी में ममता लिए
आँचल की उष्णता बांटती
फिर रही
किनारे किनारे
"बहुत समय के बाद मिटी ममता की भूख
देखी मैं ने आज जगत की जननी, माँ अपनी"

(1979)

1.प्रसिद्ध ईसाई संत महिला

क्या हुए[1]

उछलकूद हवा–सी, खिलखिलाना फूलों–सा, बांसती सांसों की–सी लुकाछिपी
मेरे ये सुंदर सपने थे, जाने क्या हुए? आपको तो नहीं मालूम?
बिजलियों की तो मुझे आदत पड़ी थी,
पर यह बिनबादल की चमक क्या कम है?
इस चमक ने मुझे दूर से देखा
और मेरे घोंसले पर आंख गड़ाके गई।
चटक रंगभरे फूल मैंने दामन में भरे
या दिल के ज़ख्म भीतर ही भीतर झेले
रक्त भरे आँसुओं की बूंदें समेट लीं
इधर गिरीं और कुछ उधर गिरीं
यह सब तो था, तुम्हारा शौक भी था। तू था और तेरा विरह भी था
यों मेरे प्यार के सफर में मुझ एक के चार चार साथी रहे
फिर अकेला पन कहां रहा ?
यह ममत्व भरी काया (जीवित भ्रांति)
कोई छाया ओढ़कर भाग चली निकल गई
समय के सागर में, लंका[2] की ग्यारह सौ मंज़िले भी तो डूब गईं थीं।

---

1. (मू०क०–कोर गय)

2. लोक कथा के अनुसार रावण का भवन (लंका) इतना ऊंचा था।

इस बरस शरद में[1]

बाग में दो जने गए
एक बच्चा और एक बूढ़ा
मुस्करा के एक दूसरे को देखते रहे
बाग की छाती ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगी
हँसते हँसते हवा के पेट में बल पड़े
उसके अंग अंग निर्बंध हो गए
आसमान ने देखा ऊपर बादल का एक टुकड़ा है
दूर हो गए सब मन मुटाव
आसपास सब (अनायास) शांत हो गया
ठण्डी ओस पत्ते पत्ते से उठी
फूल कतारों में आए और मचल उठे कि हम भी देखेंगे
गुले दाऊद की गोदी में कलियाँ कुनमनाने लगीं
गेंदे हल्दिया परिधान पहन कर उतर आने लगे
झींगुर सीटियाँ बजाकर घनेरे पेड़ों में खेलने लगे
सफेदे ने चुनकर एक पत्ता नीचे फेंका
जैसे हवा में कोई चंचल पतंग उड़ चली हो

1. (मू0क0–युहुस हरद)

'अरतल'[1] के फूलो में हुई सर सर सर
फिरहरी दौड़ चली
बच्चे ने शर्माते सकुचाते एक फूल उठाया
और बूढ़े काका को दिया
'पकलो जी, ले लो जी'[2]
चलो तुम भी कहो मैं भी कहता हूँ
"आज ईद मुबायख[3] है
ईद मुबायख ...."

1. नाज़ुक मोमी कागज़ या पतली धातु जो ज़रा सी हरकत से सरसराती है।
2. तुतलाहट में 'पकड़ो'
3 मुबारक

मैंने अभी सुबह देखा[1]

मैंने आज सुबः देखा
एक बड़े हरियर आंचल में
लुकता छिपता, जा रहा
प्रेम पगा, एक जवान
वह छैला माली, था
बहुत छरहरा
कोमल और नाजुक
कलम सरीखा
पर सूखा सा सफेद पड़ा
सिकुड़ा सा थका,
पर
बोलता संगीत कार
ताज़ा साँस में
गीत पढ़ रहा था,
छैला माली

---

1. (मू0 क0– 'मे' वुछ ऑघ्र सुबहस)

पढ़ रहा
गढ़ रहा था–
अधखिली कलियों के लिए भाषा
तिनकों टहनियों के लिए भाषा
गढ़ रहा था।
भाषा फूलों के लिए
भाषा बुलबुलों के लिए
भाषा शाखाओं अंकुरों के लिए
भाषा पेड़ों के लिए तोतलों के लिए
दूध पी रहे, छुटके नवजातों के लिए भाषा।
इस भाषाकार, बोलते संगीत कार ने,
इस छैले माली ने
चारों ओर बाग के (गाकर) फैलाया रसभरा राग
वाद्ययंत्र अपने उस रसीले राग में डुबो दिए
और बजाने लगा जिंदगी का वह सुंदर संगीत
और बजाते हुए, बजाते सुंदर साज़
यों जीवन के चित्र नए रच डाले–
लंबे कद के जवान
गठीले जवान
उन्नत (कद के) जवान
वाचाल सजीले जवान।

खुद वह जो शुभचिंतक माली था
शुभ छैला माली वह
चिथड़े पहने, हुए था।
उसकी आंखों में बुझी जोत थी जीवन की,
उसके बच्चों बालों के लिए नहीं जुटा था अन्न का दाना
छैला वह माली
व्यर्थ जी रहा
लस्त पस्त

क्या यही लिख रहा है
प्यारी तकदीर हमारी कौम की –?
क्या यही करेगा पैदा
शोभन, रुचिकर संगीत कार ?
क्या यही बनाएगा
जीवन को रमणीक ?
क्या यही मेरे फूलों–से बच्चों को बोलना सिखाता है ?
क्या यही बहारों के
माथे पर ज़री जड़ रहा (मूल्यवान)
क्या यह है वही मास्टर ?

दुचिताई[1]

फूली साँस हमारी पर हम पहाड़ चढ़े
गला हमारा सूखा पर हम पहाड़ चढ़े
घुटने थके हमारे पर हम पहाड़ चढ़े
खून दिया हमने पर हम पहाड़ चढ़े
ऊपर पहाड़ के, हरियर है मैदान खुला शीतल शांत
और मध्य में पर्वत के,उभरी, उग रही है हरियाली
अब छोड़ो जी, छोड़ो छड़ी सहारे की
इस हरियाली के चारों ओर बाड़ बांधो
भात बना लो, खालो खूब, बेखटके खाओ और पियो
आसमान रह गया सिर्फ देखो कुछ ही अंगुल दूर
दंग हैं हम, हमें खबर नहीं रही
अनायास जैसे हम पार पा गए हों शायद
हम पर मोह इस तरह छाया, जैसे हम सब कुछ भूले
हरियाली के गिर्द बाड़ ज्यों आंखों पर छाया जाला।

1.(मू0क0–दुच्यो'त)

पिजंड़ा[1]

मेरे सामने रखा किसी ने चांदी का एक पिंजड़ा
मेरे अपनों ने और गैरों ने मुझको
चारों ओर से घेरा
सच्चे आए, और एक से बड़े एक झूठे आए
लगे बनाने बातें
बचपन से मैं आदी था जिन द्वारों और दरारों का
रोशनी के वे सब रस्ते बंद किए
उसने मुझे बताया, पिंजड़े में रखा गया था मेरे लिए खाजा,
इसने मुझे बड़े सुनहरे, बड़े रुपहले सपने दिखलाए
मेरे प्रियजन मुझे ठेलते गए सूली की ही ओर।
नोच नोच कर मुझे, सोख डाला सारा माधुर्य मेरा।
मेरी भी आकाँक्षाएँ बढ़ीं
और उड़ने की हर चाहत हो गई लोप
मुझसे कहा किसी ने आंखे मूँद, जाओ भीतर
माधुर्य पाओ, वहीं तुम्हें भगवान मिलेंगे
उड़ने की, पंख, चलाने की इच्छा के कारण

1. (मू0क0–द्युप)

जो झेली कड़वाहट सब मिट जाएगी
अब गुज़ारना शीतल छाहों में जीवन के जो बाक़ी दिन हैं
ऐसे ही हम ने पाया, तुम भी अपना भाग संभालो
अब घर बैठे बासंती खुशियों पाओ
क्या मिला तुझे , शाखा से शाखा फुदकते रहे, यौवन खोया
आज बुढ़ापे में सुख पाओ, बैठे ठाले
खुद भी खाओ और हमारी झोली भी भरते जाओ।

यों उलझाकर और और मेरा पिंजड़ा
मेरे फूटे भाग ने बुना मेरा पिंजड़ा
आखिर मैं ने भी बड़ी शान से उसमें आसन जमा ही लिया।

लखची[1] के मस्सा है★

'लखची' के मस्सा है

भौहों की पुलिया के नीचे

चमक रहा हो सूरज, जैसे

नाग राय[2] ज्यों

चीड़ के नीचे

अपना मनका भूल गया हो,

ढूंढ़ रहा अब बलपुर में[3] हीमाल को

या फिर नभ के खनक रहे (घुँघचियों वाले) आंचल[4] में

बादल को गोदी में लिए हुए है पर्वतमाला।

लखची के मस्सा है।

नज्द[5] में जैसे

मजनूँ ने देखा हो सपना

ज्यो, पहाड़ की ओट में खड़ी

★. मू0 क0 – लखचि छु लखचुन।

1. लखची शायद 'लक्ष्मी' का अपभ्रंश है।
2. लोक कथा का नायक। हीमाल उसकी नायिका है। मानव बन जाने से पूर्व फन का मणि भूल जाता है।
3. बलपुर गांव में हीमाल का नैहर था।
4. दुल्हनों के 'फिरन' के आंचल में घुँघचियाँ बजती रहती थीं।
5. अरबी लोकपरंपरा में नज्द वीराना था। कश्मीरी लोककथा में वन हो गया।

लैला करती इंतज़ार,
या फिर रात ने अपने मुख से
वूंद ओस की ज़रा उठाली
वही बन गयी हो यह मस्सा।

लखची के मस्सा है
जैसे माथे का टीका
सूर्य दमकता
आँचल खनकाती, मंगल द्वीप की पद्मा[1] को ज्यों
माथे पर प्रकाश ने चूमा।

हूर सदृश है नूरजहाँ
या फिर कोई हिरन आ गया दूर कोलसर की दिशि सें
वन से, चुपके से, निकला और कुलांच मार ली ।
लखची के है मस्सा
मोल क्या करे इसका कोई
गुले लाला के
घायल सीने से
दुखी चाँद ने
दाग उधार लिया हो
अंधियारे ने ज्यों प्रकाश के, डाली हों गल बहियाँ
रक्तिम संध्या ने छाया की कतर ब्यांत कर
रख दी पत्तों पर बूंदों की छविमा

लखची के है मस्सा
कनपटी के पास लटकती
चमकती बाली,
हरमुख पर्वत की श्वेताभ हिमानी पर
अभी अभी जैसे बिजली ने
छाप दिया हो चुम्मा,
सुंदरी प्रिया कर रही अपने भ्रमर का इंतजार,
या फिर वन में सीता की आंखों से टपके
आँसू की डल झील–वेदना।

लखची के मस्सा है
श्वास नल्लिका से (शाहरग से) थोड़ा ऊपर
दिय रहा प्यार,
जैसे मेरी माँ ने
वक्ष तले हो पाला पोसा
अपनी आँख का तारा,
बड़ी संपदा, बड़े मोल वाली
सिर्फ मुहब्बत से खरया
फिर किसी गरीबन ने चावल की कनियाँ चुन कर
अंजलि भर कर भर ली अपनी हँडिया।

आज तो देखो[1].

इधर भी ज़रा एक नज़र
देखो एक नज़र चारों ओर
नहीं आपको लगता अभी धुंध, मौजूद है ?
छींटा अगर धूप का कोई अभी सलामत
उसके पीछे पीछे जैसे धुआँ भागता,
बहुत खिली हैं लेकिन फूलों की मंजरियाँ
बांट रही छवि, महक रही है चारों ओर
बहुत रंग हैं छिटके, लेकिन शर्माए–से
बहुत नमी है वासंती बयार के भीतर
बहुत बहुत है कलरव, लेकिन धीमा धीमा
बहुत उभरते हैं मन में रंगभरे विचार
मगर धुंध है क्योंकर कुंज कुंज में अटकी
क्योंकर प्यार मुसीबत में है अभी उलझता ?

लगी रोक क्यों है अभी भी सज्जनता पर
क्योंकर बंद पड़े हैं द्वार हकीकत के ?
बुलंद आवाज़ों में अब तक कसमें खा रहे
गाँधी और नेहरू की, हर ओर
सचाई क्यों फाँसी के तख्ते पर चढ़ाई जा रही
नहीं किसी गिनती में क्योंकर
सरल शुद्धता और सिधाई ?

(मू०क०–अज़ वुछिव)

वो और वह★

तेज़ लपट आग की जैसे, गुलाबी,
साड़ी लिपट गई तार के खंभे से,
गतवर्ष इसी रास्ते जो छायातप[2] चला
(उससे) मिला आस को आश्वासन,
उसने ली राहत की लंबी साँस,
बेचारी खुशबू ममतामयी मां से बिछुड़ गई, उधर
उसकी आंखों में घुलता रहा रंग, भ्रांति सा तैर रहा
याद मुझे आया ऊंचा वो कद निशात[3] के 'सरो' पेड़ सा
हवा संग में फूलों की डाली को लेकर , चली सैर करने
या बिस्मिल्ला खां[4] शहनाई में गहरी साँस फूँकने लगा
वह गले लगा संतूर को मालकौंस गा उठता है,
जर्जर हुआ तार का खंभा निराश है
टूटे बाजू वाली एक सलीब, बिना हाथ पाँव वाली।
साड़ी लिपटी एक तार के खंभे से
तीखे रंगों भरी आग
गुलाबी।

★(मू0 क0–सु त स्व)
अंग्रजी के HE तथा SHE के पर्याय कश्मीरी में 'सु' तथा 'स्व' हैं ,जो क्रमशः पुंल्लिंग तथा स्त्रीलिंग शब्द हैं। यहां 'वो' और 'वह' से लिंग भेद अभिप्रेत है।

2. *छाया की आँख मिचौनी या धूप की आंख मिचौनी । पुंलिंग है।*
3. *एक मुग़ल बाग*
4. *बिस्मिल्ला खान, प्रसिद्ध शहनाई वादक।*

गज़लें

(1) होता रहा सुबह का भ्रम[A]

सिर्फ एक ही जाम पिया सुक़रात ने
तबसे हमने 'बड़ा झील डल'[1] गटक लिया।

दिल देकर रे, जिया न बैठो हार के
नहीं जिगर को कहीं झेलना पड़े उलहना।

तुम भी उसका शौक और उछाह देखते
और यहां मानुस के बस में है भी क्या ?

जन्मों से था बूंदों को किरणों से नेह
अश्रु हमारे बस यों ही बदनाम हुए।

होता रहा सुबह का भ्रम हमको अब तक
जब तक दिन के ढले पूर्व ही शाम हुई।

धड़ धड़ धड़ करता जाता, बेकल करता
कभी चाहिए दिल रे, तू, आराम करे।

तू जाने परवाने की बलिदानी—गति
अंत जानता हूं मैं भी तो शम्मा का।

पिया किसी ने जी भर, रहा कोई प्यासा
इस बीच मगर 'नादिम' यों ही बदनाम हुआ।

A-गजलों के ये अनुवाद गज़ल—से नहीं हैं अतः शीर्षक रखे गए है।
1-बड़ा डल = श्रीनगर की 'डल' झील के दो भागों में से बड़ा भाग। कश्मीरी में 'डल' पुंल्लिंग है, और अलग से 'झील' का पर्याय भी ।

(2) मुंह जोर हुए आँसू

बरसों हुए, मेरा दिल जब था राख हुआ
आग जिगर में पाली है, यह बुझ न जाए।

डूबे हाय जिया है पत्ते पत्ते का
नहीं फूल है टस से मस, उसका क्या जाए।

जोबन का जी भरा और मन अघा गया
इसीलिए तो चला गया, चुपचाप मिटा !

हवा वसंती है बेकल बिफरी बच्ची
'खुशबू दीदी' के पीछे तो नहीं गई ?

आज चांदनी बात बात पर खिल पड़ती
कहीं मज़ार का दीया बुझ तो नहीं गया ?

सांस को मुट्ठी में रख, मैं ने बचा रखा
लेकिन जब वह ललक उठी तो निकल गई।

अनुमति बिना कभी न यों निकले आँसू
दुर्दिन में मुँह जोर आज तो नहीं हुए ?

(3) शब्दों के अर्थ ही खो गए

कभी तुम्हारी कोई ऐसी बात याद आ जाती है, जिससे
मुझे अचानक जाने क्या हो जाता है,
धूप मन के झरोखे से आते झिझकती है, मध्याह्न को ही
शाम हो जाती है,
मैं पड़ा पड़ा छत के फट्टे गिनते गिनते गिनती ही भूल जाता हूँ
मेरा अंग अंग मुझसे छूटता छिटकता जाता है
लेट जाऊं तो पसलियां फड़कने लगती हैं,
आराम हराम हो जाता है
नस नस में 'शाहतर'[1] की सी कड़वाहट भर जाती है
और रोम रोम में अफीम की तल्ख़ी घुल जाती है
घाँटी के बग़ल में चलने वाली सांस सूख जाती है,
जीभ से तालु तक पूरा का पूरा मुंह तांबे सा सख़्त हो जाता है
मेरा हर दिन जैसे महाभारत हो, हर रात रामायण, (पर)
न मेरे हृदय में आकांक्षा ही कम होती है न तुम्हारा दिल (मेरे) बस में आ रहा है।
(काश) मैं तैर कर आंसू का सागर पार कर लेता

---

1. शाहतर = एक कड़वी औषध

तुम किनारे किनारे ही चलते, मैं तुम्हारे दर्शन कर लेता

बचपन में यही सब करने के लिए मैं चुपचाप गांव चला जाता था

जब मै (इस दुनिया में) आया तो रोया, जब जाऊंगा

तो लोग मुझे रोएगें। (वास्तव में) शब्दों के अर्थ ही खो गए हैं

अब न कोई आरंभ नज़र आता है और न अंत होता लग रहा है।

उधर मेरा जोवन यों खेलता रहा और इधर सब्र ने

मेरी ज़बान पर लगाम लगाए रखी

आज तक जिसने सब कुछ सहा वह दीना नाथ कौल था,

पर आज जो बदनाम हो रहा है वह है 'नादिम'[1]।

1. *कवि का पूरा नाम – दोनानाथ कौल 'नादिम'*

(4) शाम की पीड़ा

आंचल फैला तुमसे माँगा दर्द, मेरे दीवाने।
जला गरेबान, दामन लेकिन हुआ मेरा पानी पानी।

नाम लिया ना कभी तुम्हारा, फैले कहीं न बात,
लोग हँसेंगे और कहेंगे मैं नें चर्चा स्वयं बढ़ाई।

बटा जिंदगी भर मैं ने अभिलाषा का धागा
अब जो पक्का समय आ गया, कच्चा निकला जीर्ण हुआ।

हाय गया बचपना वो मेरा, ज्यों प्रभात
फूल एक ही खिला तो मुझको लगा, यही है प्रात

जलन दाग का और जिगर का परिचय बहुत पुराना
दहन–दाग, इसलिए भेद मेरे कदमों का जाने।

तेरा चलना आंगन में, अप्सरियों का गीत बना
रात, चाँदनी में कैसे कल शाम हुआ यह चमत्कार।

(5) हिरदय का टूटा दरवाजा

चाहा जो भी याद रखूं वो भूल गया
जिसे भुलाना चाहा था, वो आया याद
मंतर पढ़ पढ़ कर, सोने की सांकल की
गांठ खोलनी चाही थी, वो आया याद
बात पते की भूला और भूल की बात
कोयल से बोला था, अब वो आया याद
अंगारा ज्यों निगल लिया मैंने उस दिन
जल्दी उसे जगाया, वो ही आया याद
ललतड़ाग[1] को, गहराई से विराग की,
वैसे मैंने जिया खँगाला, वो ही आया याद
ओस समेटी और राह के पत्थर को
भर आँजुरी पिलाया, वो ही आया याद
हिरदै का टूटा दरवाज़ा खोल दिया
मन को था भरमाया, वो ही आया याद
लाज तजी कोठरी आँख की मूंदी और
उसको पहचाना था, वो ही आया याद
भेस बदल कर एक एक आकाँक्षा को
लुक छिप कर जतलाया, वो ही आया याद
ढींग मारकर हस्ती की, यों दुनिया का
सुख भोगा सुख पाया, वो ही आया याद
अंतस की अंतरतम की अंगीठी में
हिरदय को दुलराया, वो ही आया याद।

(1965)

---

1 संत कवयित्री ललेश्वरी के नाम से जुड़ा एक तड़ाग (तालाब)

(6) चढ़ता सूरज

सूरज चढ़ता हुआ ,के, जैसे रामराज
डूबा जब, तो, जैसे रावण राख हुआ।

निर्झरिणी हंस हंस कर दुगनी हुई, मगर
उसे क्या पता कौन कहाँ कितना रोया।

झिलमिल याद बसी आंखों में है, तूने
बर्फ ढके शिखरों पर ज्यों ज्यों पैर रखा।

जोबन उसका लुटा, नहीं वह समझ सका
अंतिम क्षण मेरा भी बुढ़ापा नीरस था।

चार हुई बिजली की आंखें, किसे पता
किसने मारा तीर, लगा किसको सीधा।

हुई शरम से नग्न अमा[1], पानी पानी
सुबह की खिड़की के चौखट में छेद जो था।

अपना सा ही है कोई 'नादिम' साहब
आप जानते होंगे मैं ने ना जाना।

(1971)

1. अमा – अँधियारी

(7) उठी पुरानी अभिलाषाएँ

जगीं पुरानी अभिलाषाएँ फिर मेरी
मेरे दिल को फिर से वे अकुला गईं।
मेरी नस नस में फिर से वह ज़हर भरा
आग, भड़कती लपटें मुझको पिला गईं।
सतरंगा–इँद्रधनु क्या वसंत को दिखलाया
और शरद को जैसे बहरा बना गईं।
हम जब भी चल पड़े सलीब की राहों पर
हमने भी बस मिट्टी के कुछ कण रँग डाले।
इसे असल में मेरी मूरखता समझो
हरियर पर्वत के भालू भी छका गए।
हम घराट पर खड़े कि बारी आएगी
वो इतने में फूल लपक कर लुटा गए।
लंबी उतनी होती गई रात काली
कितना चाहे हमको ढाढस बँधा गए।
अंदर के अरमान घुट गए अंदर ही
और बाहर से और पीर वो जगा गए।
जाने कभी कि भरते भी हैं घाव मेरे
अभी गुलों को वे तो विष ही पिला गए।
शर्मा शर्मा कर ही पवन वसंती को
मौन, कान में जाने क्या क्या बता गए।
सच्चाई उनकी भी आखिर रही कहाँ
घाव मेरे अंतस के सब कुछ दिखा गए ।

(1974)

(8) चलने की बेला

कहां बुलावा वो मेरा, ढलते दिन की धूप
शीतल छांह चिनार की, तेरा लजाया रूप।

दिया गया मजनून को आज नया उलहन[1]
या फिर कौवे से हुआ उसका पुनर्मिलन।

होगा ही प्रकाश आखिर, गुज़र जाएगी रात
कैसे कहूं, नहीं होगा, धुंधला, उसके बाद।

मैंने खुद देखा तुमने कुम्हला डाले फूल
हां तू तो अनजान रहा, हुई मुझी से भूल।

नैन से चाहे ढलकें या पत्तों पर झलमल
आँसू होते शबनम से नाजुक और कोमल।

अभी रोशनी नहीं घड़ी है चलने की आई
आया तो पूछा मुझसे इतनी देर लगाई?

'नादिम' रे अब नही रही गज़ल की चाहत ही
वरना हर बोल तुम्हारा है हर फूल की पंखुड़ी।

(1972)

1. *उपालंभ ताना, उलाहना। मजनून की कथा की संदर्भ है।*

(9) अभी रात बाकी है

अभी सांस लेते रहना है
वक्त कि कैसे भी गुज़ारना है,
भले छन्नियों टोकरियों में पानी भरना है।

बड़ा चाहिए कड़ा कलेजा
मुट्ठी में दिल काबू करना है,
कूट कुचल चंचल पारे को बस में करना है।

झेले दाग़ जलन के मैंने
अब क्या तुमसे पीर बखानूँ मैं,
बर्फ माघ की, धू–धू धूप हार की वरना है।

आओ रे हम दोज़ख की
इन लपटों को जरा आज़माएँ
हीरे को पिघलाना है, हां, पिघलाना ही है।

पीकर बहक जाए कोई भी
पिए बिना भी कोई सयाना ही
इस से बढ़कर इस दुनिया से क्या कुछ लेना है?
जाने कौन सुबह तक बचता
चलो आज हम भी यह देखेंगे
अभी रात बाकी है, इंतज़ार बस करना है।
ओ रे 'नादिम' भोले मानुस
तू तो नश्वर फूल बसंती रे
मोती चुनता हूँ मैं, तूझे भी मोती चुनना है।

(1970)

दो गीत–नाट्यों के अंश

1. भौंरा और नरगिस
2. वितस्ता

1– भौंरा और नरगिस (बोंबुर त यँबरज़ल)

(भौंरा और नरगिस के बारे में लोकविश्वास है कि ये दो आपस में कभी नहीं मिल पाते, यद्यपि एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं। नरगिस वसंत में खिलकर थोड़े दिनों बाद मुर्झा कर समाप्त हो जाती है। भौंरा ग्रीष्म ऋतु में आकर भिनभिनाता हुआ जैसे प्रिया नरगिस को ढूंढ़ता रहता है। 'नादिम' ने इस गीत नाटक (1953) में प्रेम के वियोग और आशान्वित (तथा कल्पित) मिलन पक्ष के सुंदर गीतों की रचना की है। नमूने के तौर पर स्थिति प्रसंग के साथ दो गीत अनुवाद में प्रस्तुत किए गए हैं।)

पतझड़ (कश्मीरी में पुंलिंग) बढ़ता चला आता है। क्यारी तथा उपवन को उजड़ा देखकर खिलखिला कर हंसता है..........ठंडी आंधी पहाड़ से उतरती है, झड़े पत्तों को उड़ाती चलती है, धूल से चारों ओर अंधेरा छा जाता है........(पत झड़ अपना परिचयात्मक गीत गरज के साथ गाता है)............पर कहीं दूर से जीवन की मीठी धुन आकर संगीत का वातावरण पैदा करती है, दूर से नरगिस का गीत उभरता है, थका स्नेहिल गीत। पतझड़ एक झाड़ी की आड़ में छिपकर चुपचाप सुनता है:–

हां मैंने यह सुना कि मेरा प्यार आ रहा है
आने वाला है
हां मैंने यह सुना कि मेरा प्यार आ रहा है
आने वाला है

गाना नज़दीक आता जाता है, एक ओर से नरगिस प्रकट होती है, थकी मांदी, कार्तिक की चांदनी सी पीली। आकर एक चट्टान पर बैठकर दुखभरी आज़ में गाती है:–

'गिलिदूर' फूल की कटोरियों में खूब संजोई री–

वसंत की शबनम
चंदन के दीवट पर दिल के दाग़ दीप की तरह जलाए
आशाओं के राजदुलारे प्रिय को दिल की जोत जलाकर
राह दिखाऊँगी
मैंने सुना है कि मेरा प्रिय आने वाला है, आएगा ही।
चांद से कहा मैंने अपनी नाव पहाड़ी पर
टुक रोको
कोमल तारक फूल तोड़कर उसे पूजने,
मुझको जाना होगा
नई सुबह के नए नूर से प्रिय भौंरे के
पाँव आज मैं धोऊँगी
मैंने सुना है कि मेरा प्रिय आने वाला है,
बात सुनी है मैं ने पी के आवन की।
तेज़ आँधियों के पैरों में आज झनकते
घुँघरू मैं ने बाँधे हैं
उदयाचल की ऊषा के हाथों में मैं ने
मेंहदी लाल रचाई है
अपनी मधुर ताल पर अब मैं खुशबूदार हवा से
सुंदर नाच नचाऊँगी
मैं ने सुना है कि मेरा प्रिय आने वाला है
बात सुनी है मैंने पी के आवन की।

..................तूफान गाता है और नरगिस को 'चांदी की वर्षा' से संतुष्ट करने

का वचन देता है। बारिश और ओले बरसने लगते हैं ....और नरगिस जैसे उन्हीं के तले दब सी जाती है। परंतु चारों ओर भौंरे की गुंजार बढ़ती है। बादल गरजते हैं......(दृश्य बदलता है) वही क्यारी, पर बुझी हुई................अचानक दूर से गुनगुनाहट सुनाई पड़ती है...........गुनगुन बढ़ती है जैसे भौंरो का काफिला बढ़ता चला आ रहा हो............एक सूखे झाड़ के पीछे से भौंरा प्रकट होता है और ....थका हारा एक चट्टान पर बैठकर विलपता है–

मुझे छोड़ कर कहाँ गई री प्रिया,
मुझे भरमाया
मेरे घर आई ना, नरगिस, मैंने
बहुत बुलाया
मैं तेरी हरिणी सी आंखें रह रह
तकना चाहूँ
अपने तन को तेरे तन पर माला सा
पहना दूँ।
मोती जैसे आँसू की बूंदें जड़कर
पलकों में
लाया हूँ उपहार तुम्हारे लिए सजा
आंखों में।
साक़ी ने तो शायद देख तुम्हारी
ख़ाली प्याली
कह कर तुझको भरमाया, भर दूँगा
तेरी प्याली।
तू क्या गई कि उपवन सारे, चमन
चमन पगलाए
गुलेलालों ने उजले दिन में अनगिन

दीप जलाए।
भला किसी ने प्यार की कथा कही
अधूरी छोड़ी?
चाहे वह काला मजनूँ था चाहे
लैला गोरी।

विलाप करता हुआ भौंरा नरगिस को ढूंढ़ता फिरता है।

.........उसके पंखों की सरसराहट हवा को संगीतमय बनाती है और इस संगीत में कोई कोई तार जिंदगी का गीत गाता हुआ प्रतीत होता है। निराशा के अंधेरे में आशा का तार अकेली धूप की किरण सा लगता है। भौंरे का यह प्रणय–निवेदन उपवन के जीवों (फूलों) में नई स्फूर्ति पैदा करता है। इस थके चुके प्रेम को साहस देने के लिए दूर से उत्साह भरा वनवुन (लोकगीत विशेष) धीरे धीरे निकट आने लगता है..........आदि आदि।

2–वितस्ता (व्यतस्ता)

(नील–नाग (आधुनिक वेरीनाग) से निकल कर घाटी में बहती हुई वितस्ता नदी अंत में उत्तर कश्मीर की वुल्लर झील में जा गिरती है।

'वितस्ता' कश्मीरी में स्त्रीलिंग है और वुल्लर पुंलिग । इन दो के मिलन को पुराणों में प्रतीक कथा के रूप में लिया गया है। इसी पर आधारित है यह गीत नाट्य। इसके कुछ गीत संबद्ध नाट्य निर्देश तथा कथा उद्घोषणा के साथ प्रस्तुत हैं–)

(वितस्ता –त्रयोदशी[1] का सामूहिक नृत्यगान। नर्तक नर्तकियाँ हाथों में दीपक लेकर वितस्ता में बहाने के लिए नाचती गाती आ रही हैं।) वितस्ता का जन्मदिन ।.......वितस्ता के किनारों पर लोगों की भीड़ ....वितस्ता में दीपक प्रवाहित हो रहे हैं। बादशाह सजी धजी नाव में उत्सव में भाग लेने आ रहे हैं। लालितादित्य और बड़शाह...........

सिर ऊँचा कर पर्वत जिसको घेरें चारों ओर
इस ऋषियों की बाड़ी[2] की रखवारी करे वितस्ता।
दूर वनों के चीड़ संभालें वन–सीमा के छोर
इस ऋषियों की बाड़ी की रखवारी करे वितस्ता।।

---

1. *इस दिन सरकारी तौर पर 15 वीं शती तक (बड़शाह के युग तक) मनाए जाने के प्रमाण मिलते है। कश्मीरी हिंदु बीसवीं शती के उत्तरार्ध में दशकों तक इस दिन वितस्ता का जन्म दिन मनाते थे।*
2. *हिंदु ऋषियों–संतों तथा मुस्लिम सूफी–ऋषियों की लीला–वाटिका ,कश्मीर की घाटी।*

श्रृंग सुनहरे चाँदो की है पर्वतमालाएँ
पर्वत पर्वत आंचल आंचल सुमन निखर आए
नदियां निर्झर अमृत घट भर लाए हैं हर ओर
इस ऋषियों की बाड़ी की रखवारी करे वितस्ता।।

गाए स्वर्गिक हवा, निभाए इंतजार की रीत,
कहे कि कोई ध्यान से सुने मेरा वाद्य संगीत
रंग–रमणियाँ अप्सरियाँ वन–मैनाएँ हर ओर
इस ऋषियों की बाड़ी की रखवारी करे वितस्ता।।

सुँदरियाँ सज धज कर आईं बैठीं नदी किनारे
प्रभु जी सुनो हमारी विनती जीवन तुम पर वारें
'परबत[1] में और 'खानकाह[2] में दर्शन–खिड़की[3] खोल
इस ऋषियों की बाड़ी की रखवारी करे वितस्ता।।

ललवाखों[4] से नुंदश्रुक[5] मिलें (मणि से जैसे कांचन)
हिंदु मुसलमाँ गले मिल रहे प्यार बँधाता बंधन
है भ्रातृत्व पुराना, प्यार पुरातन है बेजोड़
इस ऋषियों की बाड़ी की रखवारी करे वितस्ता।।

पुजी वितस्ता सबसे, सबने बड़ा दिया सम्मान

---

1. *हारी–पर्वत (हिंदू तीर्थस्थान)*
2. *खानकाह ए मुअल्ला (मुस्लिम तीर्थस्थान)*
3. *मुस्लिम समाधि आस्तानों में मुख्य द्वार में बनी खिड़की, (दर्शन के लिए बनी खिड़की)*
4. *ललेश्वरी के पद 'ललवाख'*
5. *संत सूफी शेख नूरुददीन नुंद ऋषि के पद श्रुक श्लोक)*

राजाओं शाहों ने इसका बहुत बढ़ाया मान

इसे देख बड़शाह[1], ललतादित[2] थे आंदन विभोर

इस ऋषियों की बाड़ी की रखवारी करे वितस्ता।।

कहते हैं कि कश्मीर प्राचीन काल में एक विशाल समुद्र था–सतीसर, जिसके किनारों पर ऋषि रहते थे जो प्रभु का नामस्मरण करते थे। सर में 'जलदेव' राक्षस पैदा हुआ, जो लोगों को परेशान करता था। लोगों ने कश्यप ऋषि से विनय प्रार्थना की। कश्यप की तपस्या से प्रसन्न होकर प्रभु ने त्रिशूल से पहाड़ फोड़ा तो सर का पानी बह निकला। अंततः चारों ओर बस्ती बसी। नाग दक्षिण में और पिशाच उत्तर में बस गए। कार्य भिन्नता के कारण दोनों में झगड़े होते रहे। इन्हीं दिनों दक्षिण कश्मीर (मराज़ क्षेत्र) में नील नाग (आधुनिक वेरी नाग) के यहां वितस्ता ने जन्म लिया।............

काव्यपाठन : **कहते हैं कि नील नाग के घर 'मराज़' में**

कन्या जन्मी गोरी सुंदर एक वितस्ता

बड़ी मनोरम पूनम की ज्यों खिली चांदनी

हो गुलाब का फूल कि जैसे बीच दूध में तिरता

जन्मा उधर कुमार "कामराज़"[3] के घर पर

तेजस्वी था जैसे सूरज था वह आधा

मिलन परस्पर इन दोनों के भाग्य लिखा था

और हटानी, मिटानी सभी आज थी घृणा

...........संगीत की धुन बदलती है। नील की राजधानी में बसंत का दृश्य ....नाचते नाचते तीन "स्यंद ब्रारियाँ (त्रिसंध्या नदियाँ) सखी वितस्ता के साथ आती हैं................'वीग्य वचन'[1] की ताल पर गाने लगती हैं–

1–2 कश्मीर के प्रसिद्ध जनप्रिय राजा ललितादित्य और ज़ैनुलाब्दीन बड़शाह

3. उत्तर कश्मीर 'कामराज' कहलाता है।

1.मुझको आज बसंती बुलबुल[2] दीखा री
मेरी क्यारी में वो आकर बैठा री

2.करता था अठखेली, मुझको दीखा री
खूबानी के पेड़ पे आकर बैठा री।

3. फूल इकट्ठे करता मुझको दीखा री
फूलों लदी झुकी शाखा पर बैठा री।

4. पर्वत पर्वत घूम फिर रहा दीखा री
उदयाचल के अरुण शिखर पर बैठा री।

चारों एक साथ – हस को आज बंसती बुलबुल दीखा री
हमारी क्यारी में वो आकर बैठा री

दूसरे 'नाग'[3] तथा 'नागिनें' बारी बारी से आती हैं। त्रिसंध्या बहनें वितस्ता को साथ लेकर आती हैं।

वितस्ता – (स्वगत)

लाया है वसंत फूलों के झाबे डगर डगर पर
कहते हैं कि कामदेव है यही कहीं इस पथ पर
सांझ हुई और खिले डालियों के फूलों पर मधुस्वर

---

1. मंडोली पर नृत्य के साथ गाए जाने वाले गीत

2. कश्मीरी में बुलबुल पुंलिंग होता है।

3. नाग कश्मीरी में पानी के सोते को कहते हैं और नागिन छोटे सोते को। नाग–वंशी आदि वासी इन सोतों के स्वामी होने के कारण 'नाग' कहलाए। इन सोतों के नाम उन्हीं कबीला–प्रमुखों के नामों पर है– जैसे नीलनाग, अनंतनाग, वेरी नाग, कौंसरनाग आदि।

कहते है कि कामदेव है यही कहीं इस पथ पर।

त्रिसंध्या–1

बात कोई है छिप कर हुलसे आज वितस्ता
फूलों से क्या छिप कर पूछे आज वितस्ता
आज वितस्ता प्रिय सपनों से भेंटे खुलकर
कहते हैं कि कामदेव हैं यही कहीं इस पथ पर।

वितस्ता :

अरी त्रिसंध्या जाने क्या तू क्या सपने होते हैं
भला वितस्ता मैं जानूं क्या भंवर घने होते हैं
खिली बौर को काहे दिखाए आगन–फफोलों का डर
कहते हैं कि कामदेव हैं यहीं कहीं इस पथ पर ।

त्रिसंध्या–2

यही फफोले चिह्न प्यार के होते तुम क्या जानो
बड़ी क़यामत जोबन है, तुम जोबन को पहचानो
अधनींदे अरमान अभी तेरे हैं नाजुक दूभर
कामदेव को जानूँ उसके श्वेत वसन हैं सुंदर।

वितस्ता और कामदेव का सामना होता है। वितस्ता उससे मिलन संभव बनाने की प्रार्थना करती है। कामदेव उसे बताता है कि तेरा सुहाग 'कामराज' में है। वितस्ता डरती है पर कामदेव इस परिणय से दो क्षेत्रों और राजाओं के मनमुटाव के दूर होने की संभावना बताता है। अंततः कबीलों के विरोध और चेतावनियों के बावजूद वितस्ता का विवाह 'वुल्लर' (झील) से होता है। त्रिसंध्या, विशाखा, लंबोदरी जैसी क्षेत्रीय सखियों के अलावा उससे 'कामराज' क्षेत्र की नदी–सखियाँ अरनी और मधुमती भी आ मिलती हैं। बौद्ध अर्हत और सैयद उसे आशीर्वाद देते हैं। वितस्ता ससुराल जाती है। वहां उसका स्वागत गायन से होता है:–

अरुणाचल ने नई किरण गोदी में लेके झुलाई रे
आज हमारे घर में वितस्ता दुल्हन बन के आई रे
तूने अब तक नहीं बधाई ऊंचे सुर में गाई रे?
आज हमारे घर में वितस्ता दुल्हन बनकर आई रे!

अब वुल्लर महाराज का, नील नाग से मेल हुआ
खिले प्यार के सुमनों का यों बाग़ बाग़ में खेल हुआ

(वुल्लर राजा वितस्ता के दोनों हाथ अपने
हाथों में थाम लेते हैं। गाने की लय आगे बढ़ती है)

ग्रहण –कालिमा आज चांद ने बरसों बाद हटाई रे
आज हमारे घर में वितस्ता दुल्हन बन कर आई रे!

डगर डगर पर फूल खिलें हैं विहँस रही हैं राहें
आई बहार कुछ समय से पहले खोले अपनी बाहें
हरियर में वनप्रांतर में चादर फूलों बिछाई रे
आज हमारे घर में वितस्ता दुल्हन बन कर आई रे !

आज भोर के तारे ने सूरज से होड़ लगाई
रानी ने राजा की पहली प्रीत स्वप्न में पाई
सुहागरात के माथे पर है चमके भाग्य लुनाई रे
आज हमारे घर में वितस्ता दुल्हन बन कर आई रे।

भागी भागी देखो आईं वन की सुंदर अप्सरियाँ
चाहें कदम कदम पर इसकी छाया चूमें परियाँ
मीठी धुन में ऊँचे सुर में गाती चलीं बधाई रे
आज हमारे घर मै वितस्ता दुल्हन बन कर आई रे।





Published by the Secretary on behalf of the Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages JAMMU, and printed at M/s J.K Offset Printers 315 Matia Mahal Jama Masjid Delhi -110 006